इकाई–3

कारक मूल्य–निर्धारणः सीमांत उत्पादकता सिद्धांत और कारकों की मांग; कारक इनपुट की आपूर्ति की प्रकृति; सही प्रतियोगिता और एकाधिकार के तहत मजदूरी दरों का निर्धारण; श्रम का शोषणय किराए अवधारणा; रिकार्डियन और किराए के आधुनिक सिद्धांत; क्वासी का किराया।

इस इकाई को पढ़ने के बाद, छात्र

1. कारक मूल्य निर्धारण की अवधारणा को समझ सकेंगे
2. सीमांत उत्पादकता सिद्धांत की अवधारणा को समझ सकेंगे
3. कारक आदानों की आपूर्ति की प्रकृति से परिचित हो सकेंगे
4. समझें कि कैसे मजदूरी दरों को सही प्रतिस्पर्धा और एकाधिकार बाजार स्थितियों के तहत निर्धारित किया जाता है
5. किराए की अवधारणा और रिकार्डियन और किराए के आधुनिक सिद्धांतों को समझ सकेंगे

Unit–III

कीमतों के साधन – I

(Factor Pricing – I)

साधन कीमत सिद्धान्त साधन कीमत सिद्धान्त क्या है?–साधन कीमत सिद्धान्त में यह अध्ययन किया जाता है कि भूमिपति को मिलने वाला लगान, श्रमिक की मजदूरी, पूँजी की सेवाओं के लिए प्राप्त ब्याज तथा उधमी को प्राप्त होने वाला लाभ कैसे निर्धारित होता है। इन साधनों को उत्पादन सेवाएँ, साधन का आगत भी कहा जाता है।

साधन कीमत निर्धारण के सिद्धान्त

(1) सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

(2) आधुनिक सिद्धान्त

1. **सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त** : इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1826 में जर्मन अर्थशास्त्री T.H. Von Thunen ने किया था। इसका विकास कार्ल मेंजर, बोध्य बेवरक, वालरस तथा विकस्टीड, ऐजवर्थ तथा क्लार्क ने किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में साधनों की सेवाओं का मूल्य उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर निर्धारित होता है। साधनों की माँग इसलिए की जाती है क्योंकि उनमें वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन करने की योग्यता होती है। वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन करने की योग्यता को ही साधन की उत्पादकता कहा जाता है अतएव उत्पादन के साधन की माँग उसकी उत्पादकता के लिए की जाती है। उत्पादकता ज्ञात करने के लिए आवश्यक है कि अन्य साधनों को स्थिर रखकर उस साधन की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग किया जाए। इसके फलस्वरूप कुल उत्पादन में जो वृद्धि होगी, वह मुख्यतः उस साधन की अतिरिक्त (Extra) इकाई के कारण होगी। कुल उत्पादन में होने वाली इस वृद्धि को ही उस साधन की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) कहा जाएगा। अतएव साधनों की परस्पर निर्भरता के फलस्वरूप उनकी सीमान्त उत्पादकता पर ही उनकी माँग निर्भर करेगी।

सिद्धान्त की मान्यताएँ

(Assmptions of the Theory)

साधन कीमत का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

(1) **वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition in Product Market)** : वस्तु बाजार में जहाँ उत्पादित वस्तु को बेचा जाएगा, पूर्ण प्रतियोगिता है। अतएव वस्तु की सीमान्त आय तथा औसत आय बराबर होगी अर्थात् एक फर्म के द्वारा उत्पादन बढ़ाने पर कीमत में कोई अन्तर नहीं आएगा।

(2) **साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition in Factor Market):** साधन बाजार में भी पूर्ण प्रतियोगिता है। प्रत्येक फर्म को साधन की प्रचलित कीमत देनी पड़ेगी। पूर्ण प्रतियोगिता के कारण सभी साधन पूर्णतया गतिशील (Perfectly Mobile) है, तथा उनकी पूति पूर्णतया मूल्य सापेक्ष (Perfectly Elastic) है।

(3) **साधनों की समरूपता (Homogeneous Factors)** : उत्पादन के किसी भी साधन विशेष की सभी इकाईयाँ समरूप (Homogeneous) हैं। इनका एक दूसरे के लिए स्थानापन्न (Substitution) किया जा सकता है।

(4) **प्रतिस्थापित साधन (Substitutable Factors)** : उत्पादन के विभिन्न एक–दूसरे के पूर्णतया प्रतिस्थापित (Perfectly Substitutable) हैं अर्थात् श्रम के लिए पूंजी का प्रयोग किया जा सकता है।

(5) **पूर्णतया गतिशील (Perfectly Mobile)** : साधनों की प्रत्येक इकाई पूर्णतया गतिशील है, इसलिए एक साधन की कीमत विभिन्न व्यवसायों में एक समान होगी।

(6) **साधनों का विभाजन (Divisible Factors)** : उत्पादन के विभिन्न साधनों का छोटी–छोटी इकाईयों में विभाजन किया जा सकता है।

(7) **अधिकतम लाभ (Maximum Profit)** : उत्पादन करने का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है।

(8) **पूर्ण रोजगार (Full Employment)** : अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की अवस्था पाई जाती है। इस मान्यता का अर्थ यह हुआ कि साधन की पूर्ति स्थिर रहती है।

(9) **परिवर्तन साधन संयोग (Variable Input Co-efficient)** : उत्पादन के साधनों का विभिन्न अनुपात में जा सकता है अर्थात किसी एक साधन की मात्रा को, अन्य साधनों की स्थिर मात्रा के साथ घटाया या बढ़ाया जा सकता है। जैसे एक हेक्टेयर भूमि पर चार श्रमिक या पाँच श्रमिक काम पर लगाए जा सकते हैं।

(10) **उत्पादन की तकनीक स्थिर रहती है (State of Technology Remains Constant)** : इस सिद्धान्त की यह भी मान्यता है कि उत्पादन की तकनीक में भी कोई परिवर्तन नहीं आता।

सीमान्त उत्पादकता के अर्थ तथा प्रकार

(Meaning and Types of Marginal Productivity)

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की व्याख्या करने से पूर्व हमें सीमान्त उत्पादकता तथा उसके विभिन्न प्रकारों का अर्थ भलीभाँति समझ लेना चाहिए। अर्थशास्त्र में सीमान्त उत्पादकता शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में किया जाता है:

(1) **सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity)** : जब हम सीमान्त उत्पादकता को उत्पादन (वस्तुओं) की मात्रा में होने वाली वृद्धि के रूप में व्यक्त करते हैं तो उसे सीमान्त भौतिक उत्पादकता कहा जाता है। प्रो. एम. जे. उल्मर के शब्दों में, ''अन्य सब बातों के समान रहने पर किसी एक साधन की अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उत्पादन में जो वृद्धि होगी उसे सीमान्त भौतिक उत्पादकता कहा जाएगा।'' (Marginal Physical productivity may be defined as the addition to total production resulting from employment of one more unit of a factor of production, all other things being constant– M.J. UImer) उदाहरण के लिए, यदि एक श्रमिक लगाने से कपड़े का उत्पादन 5 मीटर होता है तथा दूसरा श्रमिक लगाने से कुल उत्पादन बढ़कर 9 मीटर हो जाता है तो दूसरे श्रमिक की सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP)=9 मीटर–5 मीटर=4 मीटर कपड़ा होगा। श्रम की इकाई की सीमान्त भौतिक उत्पादकता को निम्नलिखित समीकरण द्वारा व्यक्त किया जा सकता:

$$MPP_n = TPP_n — TPP_{n-1}$$

यहाँ पर MPP_n = श्रम की nth इकाई की सीमान्त भौतिक उत्पादकता TPP_n = श्रम की इकाईयाँ लगाने पर कुल भौतिक उत्पादकता।

(TPP_{n-1} = श्रम की $_{n-}$ इकाइयां लगाने पर कुल भौतिक उत्पादकता।)

(2) **सीमान्त आय या आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity)** : सीमान्त आय उत्पादकता की धारणा का सम्बन्ध कुल आय में होने वाले परिवर्तन से है। प्रो. उल्मर के शब्दों में, ''अन्य सब बातें समान रहने पर किसी एक साधन की अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल आय में जो वृद्धि होगी उसे सीमान्त आय उत्पादकता कहा जाएगा।'' (Marginal revenue productivity may be defined as the addition to total revenue resulting from employment of one more unit of a factor of production] all other things being constant– M.J. Ulmer) को **सीमान्त आय उत्पादकता** (MRP) का अनुमान लगाने के लिए सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को सीमान्त आय (MR) से गुणा कर दिया जाता है। अतएव MRP =MPPXMR

उदाहरण के लिए, यदि एक श्रमिक को काम पर लगाने से 25 रुपये मूल्य के कपड़े का उत्पादन होता है तथा दो श्रमिकों को काम पर लगाने से 45 रुपये मूल्य के कपड़े का उत्पादन होता है तो दूसरे श्रमिक की सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) 45 रुपये – 25 रुपये=20 रुपये।

3. सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (Value of Marginal Productivity) : एक साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) को उस साधन द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत (AR) से गुणा करने से जो आय बढ़ती है, उसे सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP) कहा जाता है। प्रो. फर्गुसन के अनुसार, "एक परिवर्तनशील उत्पादन के साधन की सीमान्त भौतिक उत्पादकता को सम्बन्धित वस्तु की बाजार कीमत से गुणा करने पर सीमान्त उत्पादकता के मूल्य का ज्ञान होता है।'' (The Value of Marginal Product of a variable factor is equal to its marginal product multiplied oby the market price of the commodity in question. —Ferguson)

अतएव

VMP=(MPP) x (AR)

उदाहरण के लिए, यदि कपड़े की कीमत 5 रुपये प्रति मीटर है तथा दूसरे श्रमिक की सीमान्त भौतिक उत्पादकता 4 मीटर है तो सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मूल्य (VMP)=40x5=20 रुपये होगा।

यह ध्यान रखना चाहिए कि पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में फर्म के लिए बिक्री के सभी मात्राओं के लिए कीमत स्थिर होती है तथा सीमान्त आय (MR) तथा औसत आय या कीमत (AR or Price) बराबर होते हैं अर्थात् MR=AR। इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) तथा सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मूल्य (VMP) भी बराबर होंगे अर्थात् MRP=VMP। परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) तथा सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मूल्य (VMP) भी अलग–अलग होगा।

सीमान्त उत्पादकता के विभिन्न प्रकारों को निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

Table 6-1
Various Types of Marginal Product Under Perfect Competition

Unit of Labour	Total Product in Metre	Marginal Physical Product in Metre	Price Per metre AR=MR	Marginal Revenue Product MRP = MPPxMR	Value of Marginal Product VMP = MPPxAR
			Rs.	Rs.	Rs.
1	5	-	5	-	-
2	9	4	5	20	20
3	12	3	5	15	15
4	14	2	5	10	10
5	15	1	5	5	5

तालिका 6.1 से ज्ञात होता है कि जब एक श्रमिक को काम पर लगाया जाता है तो कुल उत्पादन 5 मीटर होता है, जब दो श्रमिकों को काम पर लगाया जाएगा तो कुल उत्पादन 9 मीटर होगा। इस प्रकार दूसरे श्रमिक की सीमान्त भौथ्तक उत्पादकता 4 मीटर होगी। तालिका से ज्ञात होता है कि जैसे–जैसे श्रमिकों की संख्या बढ़ाई जाती है, उनकी सीमान्त भौतिक उत्पादकता कम होती जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में वस्तु की कीमत अर्थात् औसत आय (AR) तथा सीमान्त (MR) बराबर होते हैं। इसलिए श्रमिक की सीमान्त आय उत्पादकता तथा सीमान्त उत्पादकता का मूल्य बराबर होगा जैसे दूसरे श्रमिक की सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) 20 रुपये है तो सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP) भी 20 रुपये ही है।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की व्याख्या

(Explanation of the Marginal Productivity Theory)

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता तथा पूर्ण रोजगार की अवस्था में उत्पादन में उत्पादन के प्रत्येक साधन को उनकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर कीमत प्राप्त होगी। पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में साधन की कीमत उद्योग द्वारा निर्धारित की जाएगी। उद्योग द्वारा निर्धारित साधन कीमत पर फर्म यह तय करेगी कि किसी साधन की उस संख्या को काम पर लगाया जाएगा जिस पर उस साधन की कीमत उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो जाती है। अतएव एक उद्योग की दृष्टि से यह सिद्धान्त, ''साधन कीमत सिद्धान्त है'' परन्तु एक फर्म की दृष्टि से यह सिद्धान्त रोजगार का सिद्धान्त तथा साधन की माँग का सिद्धान्त है।

प्रो. ब्लाग के अनुसार, ''सीमान्त का सिद्धान्त एक उद्योग के स्तर पर, यदि साधन की पूर्ति दी हुई है, तो यह साधन कीमत का सिद्धान्त है, तथा एक फर्म के स्तर पर यदि साधन की कीमत दी हुई है तो यह साधन के रोजगार का सिद्धान्त है।'' (The marginal productivity theory is a theory of factor pricing on industry's level] the supply of factor to the industry being given] for the firm it is employment theory, the rate of factor pricing being given. —M. Blaug)

एक उद्योग के दृष्टिकोण से सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त का विश्लेषण

(Anlysis of Marginal Productivity Theory from the Point of View of an Industry)

पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में किसी साधन की कीमत, उद्योग सम्बन्धी माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। साधन कीमत उस स्तर पर निर्धारित होती है जिस पर उसकी माँग और पूर्ति बराबर होती है। सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है। इस स्थिति में उत्पादन के साधन की पूर्ति को स्थिर माना गया है। अतएव साधन की कीमत, माँग द्वारा निर्धारित की जाएगी। हम जानते हैं कि किसी साधन की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा निर्धारित की जाती है। इसलिए पहले हमें एक उद्योग अर्थव्यवस्था के लिए किसी साधन की माँग वक्र या सीमान्त उत्पादकता वक्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

एक उद्योग बहुत सी फर्मों का समूह होता है। अतएव एक उद्योग की किसी साधन सम्बन्धी माँग वक्र का अनुमान उस उद्योग की फर्मों की माँग के द्वारा लगाया जा सकता है। एक फर्म के लिए किसी साधन का सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) वक्र उसकी माँग वक्र (Demand Curve) ही होती है। इसका कारण यह है कि उत्पादक श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता के आधार पर ही श्रम की माँग करता है तथा केवल उतने ही श्रमिकों को रोजगार प्रदान करेगा जिससे कि श्रमिकों की सीमान्त आगम उत्पादकता तथा मजदूरी की दर बराबर रहे। रेखाचित्र नं. 6.1 (A) तथा (B) में श्रम की सीमान्त उत्पादकता, श्रम की मजदूरी दर तथा श्रम की माँग के सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया है। स्पष्ट है कि रेखाचित्र नं. 6.1(A) में श्रम की माँग वक्र क्स तथा रेखाचित्र नं. 6.1(B) में एक सीमान्त आगम वक्र MRP है।

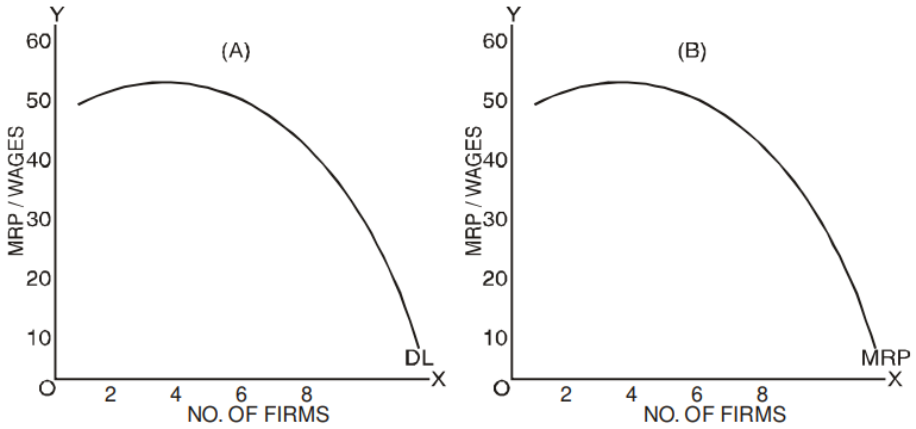

चित्र 6.1

चित्र 6.1 यह माँग वक्र इस मान्यता पर आधारित है कि साधन विशेष की कीमत में परिवर्तन होने पर फर्म विशेष तथा अन्य फर्में उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन नहीं करेंगी। परन्तु वास्तविक रूप में ऐसा नहीं होता। अगर मजदूरी की दर कम हो जाती है तो फर्म विशेष अपने लाभ के उद्देश्य को अधिकतम करने के उद्देश्य से अधिक मजदूरों को काम पर लगाएगी। इसी प्रकार दूसरी फर्में भी अधिक संख्या में मजदूरों को काम पर लगाकर उत्पादन बढ़ाएँगी। परिणामस्वरूप बाजारों में वस्तु विशेष की पूर्ति बढ़ेगी तथा कीमत कम हो जाएगी। ऐसी परिस्थिति में सीमान्त वक्र अपने मूल स्थान से हटकर मूल बिन्दु की ओर खिसक जाएगा। रेखाचित्र नं. 6.2 में इसे स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र नं. 6.2 द्वारा स्पष्ट होता है कि MRP, प्रारम्भिक सीमान्त आय उत्पादकता वक्र है। जब मजदूरी की दर OW है तथा श्रमिकों की माँग OA (WL) है। यदि मजदूरी की दर OW से कम होकर व्व हो जाती है तो एक फर्म अपने लाभ को अधिकतम उद्देश्य से अधिक श्रमिक लगाकर उत्पादन बढ़ाएगी। सभी फर्मों द्वारा ऐसा करने पर बाजार में वस्तु विशेष की पूर्ति में वृद्धि होगी तथा कीमत कम होगी। इसके फलस्वरूप सीमान्त आय उत्पादकता भी कम हो जाएगी। परिणामस्वरूप सीमान्त आय उत्पादकता वक्र बायीं ओर खिसक कर MRP_2 हो जाएगी। MRP_1 वक्र से ज्ञात होता है कि OP मजदूरी की दर पर श्रम की माँग OA से बढ़कर OM (PN) हो जाएगी। इस स्थिति में बिन्दु L तथा N को मिलाने वाली वक्र फर्म की साधन के लिए **सीमान्त उत्पादकता वक्र** (Marginal Productivity Curve) या मॉग वक्र होगी। उद्योगों की माँग वक्र ज्ञात करने के लिए हमें सभी माँग वक्रों का समस्तर जोड़ (Lateral Summation) लेना होता है। पूर्ण, प्रतियोगिता की परिस्थिति में क्योंकि फर्मों की संख्या स्थिर है नहीं होती, उनके सीमान्त उत्पादक वक्रों का समस्तर जोड़ नहीं लगाया जा सकता परन्तु यह कहा जा सकता है कि उद्योग का माँग वक्र एक फर्म के माँग वक्र की तरह ऊपर से नीचे की ओर झुका होगा।

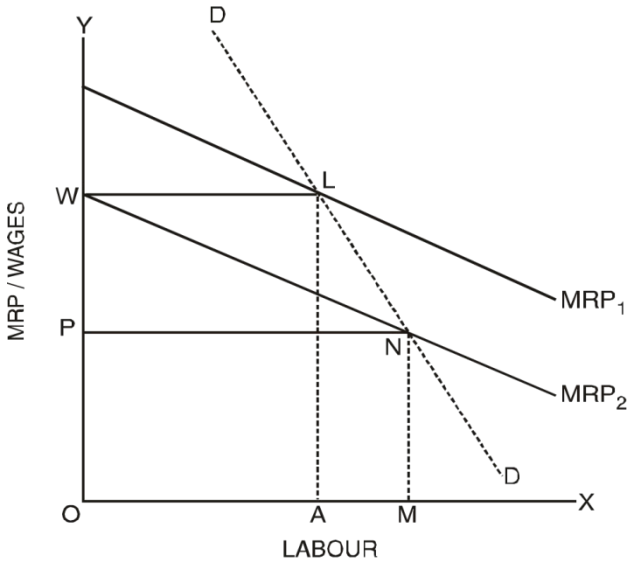

चित्र 6.2

एक उद्योग की किसी साधन के लिए माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र जिस बिन्दु पर एक–दूसरे को काटेगी उस बिन्दु द्वारा उस साधन की कीमत निर्धारित होगी। उद्योग के लिए साधन की पूर्ति को स्थिर माना गया है। इसलिए साधन की कीमत मुख्य रूप से माँग वक्र द्वारा निर्धारित होगी। अर्थात् सीमान्त उत्पादकता के बराबर तय होगी। इसे रेखाचित्र नं. 6.3 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र नं. 6.3 में OX अक्ष पर श्रम की संख्या तथा OY अक्ष पर मजदरी की दर तथा श्रम की सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) प्रकट की गई है। DD वक्र उद्योग के लिए श्रम की माँग वक्र या सीमान्त उत्पादकता वक्र है, इसका ढलान ऊपर से नीचे की ओर है।

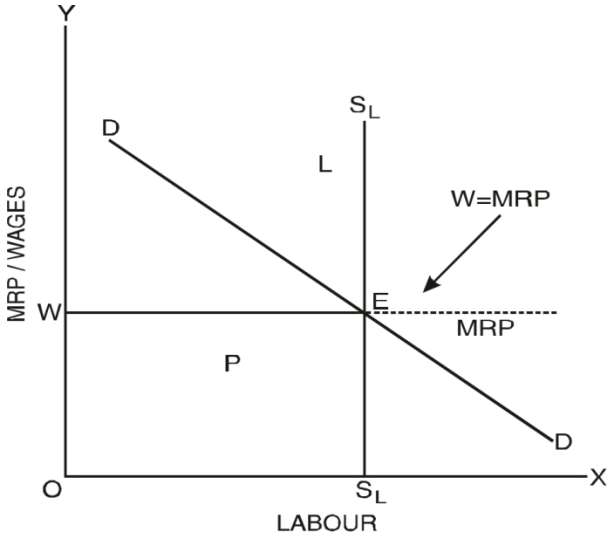

चित्र नं. 6.3

S_L S_L श्रम का पूर्ति वक्र है। यह OY अक्ष के समान्तर है। इससे ज्ञात होता है कि पूर्ण रोजगार की स्थिति में श्रम की पूर्ति OS_L के बराबर स्थिर है। श्रम की माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र 'E' बिन्दु पर एक–दूसरे को काट रहे हैं। अतएव 'E' बिन्दु सन्तुलन बिन्दु है, इस बिन्दु पर श्रम की माँग तथा पूर्ति दोनों बराबर हैं। बिन्दु 'E' से ज्ञात होता है कि मजदूरी की दर OW निर्धारित होगी। यह मजदूरी की दर या साधन कीमत OW श्रम की सीमान्त उत्पादकता के बराबर है अर्थात्

साधन कीमत (OW) =सीमान्त आगम उत्पादकता=MRP= (ES_L)

अतएव पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में साधन कीमत उद्योग द्वारा निर्धारित होती है। इस कीमत पर फर्म की माँग करती है। अतएव साधन की माँग का अनुमान फर्म द्वारा लगाया जा सकता है।

एक फर्म के दृष्टिकोण से सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का विश्लेषण

(Analysis of the Marginal Productivity Theory from the Point of View of a Firm)

पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में उत्पादन के साधन की कीमत जैसे मजदूरी की दर उद्योग द्वारा अर्थात् सामूहिक माँग तथा पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। फर्म को केवल यह तय करना पड़ता है कि कितने श्रमिकों को रोजगार प्रदान करना है। इस सिद्धान्त के अनुसार एक फर्म पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में किसी भी साधन की उस मात्रा को काम पर लगाएगी जिस पर उस साधन की कीमत तथा सीमान्त उत्पादकता मूल्य के बराबर हो जाए। अतएव एक फर्म के दृष्टिकोण से इस सिद्धान्त द्वारा यह ज्ञात होता है कि फर्म द्वारा किसी साधन की कितनी माँग की जाएगी।

इसलिए इस सिद्धान्त को **साधन माँग का सिद्धान्त (Theory of Factor Demand)** भी कहा जाता है। अन्य बातें समान रहने पर एक फर्म जैसे–जैसे श्रमिकों को रोजगार देती जाएगी, तो श्रमिकों की सीमान्त भौतिक उत्पादकता कम होती जाएगी। इसके फलस्वरूप श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत पूर्ण प्रतियोगिता में स्थिर रहने के कारण श्रम की सीमांत भौतिक उत्पादकता में कमी के साथ–साथ सीमान्त आय उत्पादकता भी कम होती जाएगी। एक फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से केवल उस सीमा तक श्रमिकों को रोजगार पर लगाएगी जिस पर श्रम की सीमान्त आय उत्पादकता तथा श्रम की कीमत या मजदूरी दर बराबर हो जाए। यदि फर्म उस सीमा तक श्रमिकों को रोजगार पर लगाएगी जिस पर उनकी सीमान्त आय उत्पादकता उनकी मजदरी से कम है तो फर्म की हानि होगी। इस सिद्धान्त की तालिका नं. तथा रेखाचित्र 4 द्वारा व्याख्या की गई है।

Table 6-2:
Marginal Productivity Schedule

श्रमिकों की संख्या	सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP)	कीमत AR=MR	सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) (रुपये)	मजदूरी दर (रुपये)
1	10	2	10x2=20	8
2	8	2	8x2=16	8
3	6	2	6x2=12	8
4	4	2	4x2=8	8
5	2	2	2x2=4	8

तालिका नं. 6.2 से ज्ञात होता है कि मजदूरी दर 8 रुपये प्रति श्रमिक है। वस्तु की कीमत 2 रुपये प्रति इकाई है। जब फर्म एक श्रमिक को काम पर लगाती है तो उसकी सीमान्त भौतिक उत्पादकता (MPP) 10 इकाई होती हैं सीमान्त भौतिक उत्पादकता को वस्तु की कीमत से गुणा करने पर सीमान्त आय उत्पादकता या सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (MRP or VMP) 10x2=20 रुपये ज्ञात होता है। इसी प्रकार दूसरे श्रमिक की सीमान्त आय उत्पादकता 16 रुपये, तीसरे श्रमिक की 12 रुपये तथा चौथे श्रमिक की 8 रुपये होगी। चौथे श्रमिक की सीमान्त आय उत्पादकता तथा उसे दी जाने वाली मजदूरी बराबर है। अतः फर्म की अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए 4 श्रमिकों को ही काम पर लगाएगी। यदि फर्म पांचवें श्रमिक को काम पर रखेगी तो फर्म को 4 रुपये की हानि उठानी पड़ेगी, क्योंकि पाँचवे श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता 4 रुपये है। जबकि फर्म को उसे बाजार में प्रचालित मजदूरी अर्थात् 8 रुपये देनी पड़ेगी। इस प्रकार फर्म को 4 रुपये की हानि होगी। अतः फर्म अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए उत्पादन के किसी भी साधन की उस सीमा तक माँग करेगी जिस पर उस साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा उस साधन की कीमत बराबर हो जाए।

सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त को रेखाचित्र नं. 6.4 द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र नं. 6.4 में OX अक्ष पर श्रमिकों की संख्या तथा OY अक्ष पर श्रमिकों की मजदूरी तथा सीमान्त आय प्रकट की गई है। MRP सीमान्त उत्पादकता वक्र तथा WW मजदूरी रेखा है। पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में मजदूरी की दर स्थिर रहेगी। इसलिए WW रेखा OX अक्ष के समानान्तर है। सीमान्त आय उत्पादकता MRP वक्र नीचे की ओर झुकी हुई है। यह वक्र E बिन्दु पर मजदूरी रेखा चित्र नं. 6.4 को काट रही है। इसलिए E बिन्दु (MRP=Wage Rate=8 रुपये) संतुलन बिन्दु होगा। बिन्दु E से ज्ञात होता है कि उत्पादक 8 रुपये मजदूरी पर चार श्रमिकों की माँग करेगा। यदि उत्पादक पाँच श्रमिकों को काम पर लगाएगा तो उसे पाँचवें श्रमिक से केवल 4 रुपये के बराबर सीमान्त आय उत्पादकता प्राप्त होगी जबकि उसे 8

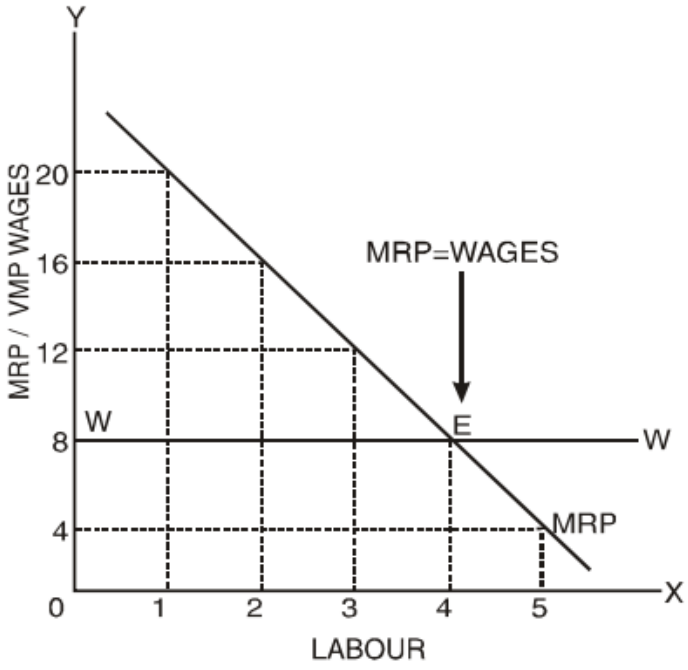

चित्र नं. 6.4

रुपये मजदूरी देनी पड़ेगी। इस प्रकार फर्म को पाँचवें श्रमिक को काम पर लगाने से 4 रुपये की हानि उठानी पड़ेगी। अतएव इस सिद्धान्त के अनुसार, उत्पादन के साधन की माँग उस सीमा तक की जाएगी जिस पर सीमान्त उत्पादकता तथा साधन की कीमत बराबर हो जाए। एक फर्म के लिए विभिन्न साधनों का सर्वोत्तम संयोग वह होगा जिस पर

$$\frac{MRP_A}{P_A} = \frac{MRP_B}{P_B} = \ldots \frac{MRP_n}{P_n}$$

फर्मों की माँग के आधार पर उद्योग की माँग कर अनुमान लगाया जाता है।

आलोचनाएँ (Criticism)

साधन कीमत की सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की हाब्सन, वीजर, फ्रेजर, केन्ज आदि कई अर्थशास्त्रियों ने मुख्य रूप से निम्नलिखित आलोचनाएँ हैं:

(1) अवास्तविक मान्यताएँ (Unrealistic Assumptions)–सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त कई अवास्तविक मान्यताओं जैसे पूर्ण प्रतियोगिता, पूर्ण गतिशीलता, पूर्ण रोजगार आदि पर निर्भर करता है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में, जैसा कि श्रीमती जॉन रोबिन्सन, चेम्बरलेन आदि का विचार है कि पूर्ण प्रतियोगिता के स्थान पर अपूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है। साधनों की गतिशीलता भी अपूर्ण होती है। संसार के अधिकतर देशों में पूर्ण रोजगार की अवस्था नहीं पाई जाती है। अतएव इस सिद्धान्त का व्यावहारिक महत्त्व बहुत कम हो जाता है।

(2) असमान साधन (Heterogeneous Factors): साधन कीमत के इस सिद्धान्त की यह मान्यता है कि प्रत्येक साधन की विभिन्न इकाइयाँ एक समान (Homogeneous) होती है, गलत है। वास्तविक जीवन में प्रत्येक साधन की विभिन्न इकाइयों में असमानता पाई जाती है जैसे सभी श्रमिक एक जैसे कार्यकुशल नहीं होते।

(3) अविभाज्य साधन (Indivisible Factors)–सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त की यह मान्यता भी वास्तविक नहीं है कि साधनों को छोटे–छोटे भागों में विभाजित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, हम कई मशीनों को छोटे–छोटे भागों में नहीं बाँट सकते हैं। इस प्रकार उनकी सीमान्त उत्पादकता का अनुमान लगाना कठिन हो जाता है।

(4) सीमान्त उत्पादकता के माप में कठिनाइयाँ (Difficulties in the Measurement of Marginal Productivity) : प्रो. हाब्सन ने अपनी पुस्तक 'जेम प्दकनेजतपंस ैलेजमउ' में इस सिद्धान्त की कटु आलोचना करते हुए कहा है कि सीमान्त उत्पादकता को कई कारणों से मापना सम्भव नहीं है। सीमान्त उत्पादकता को तभी मापा जा सकता है जब उत्पादन के अन्य साधनों की संख्या में बिना परिवर्तन किए हुए केवल एक साधन जैसे श्रमिकों की संख्या में परिवर्तन करके उत्पादन को बढ़ाया जा सके, परन्तु अधिकतर दशाओं में उत्पादन बढ़ाने के लिए श्रमिकों की संख्या के साथ–साथ कच्चे माल, औजार, मशीनरी आदि की मात्रा को बढ़ाना भी आवश्यक है।

(5) एकपक्षीय (One Sided) –मार्शल, फ्रिडमैन, ब्लाग आदि अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि यह सिद्धान्त केवल माँग पक्ष की ही व्याख्या करता है तथा पूर्ति को स्थिर मान लेता है। अल्पकाल में तो यह सम्भव है कि किसी साधन की पूर्ति स्थिर हो तथा केवल सीमान्त उत्पादकता अर्थात् माँग द्वारा ही उसकी कीमत निर्धारित हो परन्तु दीर्घकाल में प्रत्येक साधन की पूर्ति में परिवर्तन आता रहता है। अतएव साधन कीमत के निर्धारण पर माँग तथा पूर्ति दोनों का ही प्रभाव पड़ेगा जबकि यह सिद्धान्त केवल माँग के द्वारा ही साधन कीमत को निर्धारित करने का प्रयत्न करता है, अतएव यह एक पक्षीय है।

(6) दीर्घकालीन स्थिर अर्थव्यवस्था (Long Term Stationary Economy) : प्रो. क्लार्क द्वारा प्रतिपादित सीमान्त पादकता सिद्धान्त दीर्घकालीन स्थिर अवस्था की मान्यता पर निर्भर है। इस धारणा के अनुसार अर्थव्यवस्था में दीर्घकाल में पर्ण प्रतियोगी सन्तलन की अवस्था पाई जायेगी। इस अवस्था में साधनों की कीमत : उत्पादकता के बराबर तय होगी। परन्तु वास्तविक जीवन में गत्यात्मक (Dynamic) अवस्था पाई जाती है। इस अवस्था में आर्थिक तत्त्वों जैसे जनसंख्या, रुचि, उत्पादन, तकनीक आदि में परिवन्नन आते रहते हैं। इसके फलस्वरूप सीमान्त उत्पादकता में भी परिवर्तन आता रहता है। अतएव सन्तुलन की स्थिति प्राप्त करनी सम्भव नहीं होती।

(7) साधन कीमत निर्धारण में असफल (Fails to Determine Factor Pricing) : प्रो. फैलनर के अनुसार सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त साधन की कीमत निर्धारित नहीं करता है। पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में प्रत्येक फर्म को साधन की प्रचलित कीमत देनी पड़ती है। वह कीमत उद्योग द्वारा साधन की माँग तथा पूर्ति के सन्तुलन बिन्दु पर तय की जाती है। इस कीमत के आधार पर एक फर्म यह तय करती है कि एक साधन की केवल उतनी मात्रा को रोजगार प्रदान करना है जिस पर साधन की सीमान्त उत्पादकता तथा कीमत बराबर हो जाए। अतएव यह सिद्धान्त एक साधन की कीमत को निर्धारित नहीं करता ब्लकि केवल उसकी माँग को ही निर्धारित करता है।

(8) कारण तथा परिणाम (Cause and Effect)–प्रो. क्लार्क के अनुसार प्रत्येक साधन की कीमत पर उसकी सीमान्त उत्पादकता का प्रभाव पड़ता है अर्थात् सीमान्त उत्पादकता कारण है तथा साधन कीमत परिणाम है। परन्तु प्रो. वेबल्स (Prof- Webls) के अनुसार वास्तव में साधन कीमत का भी सीमान्त उत्पादकता पर प्रभाव पड़ता है। एक साधन की अधिक कीमत देकर उसकी कार्यकुशलता में वृद्धि करके सीमान्त उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। अतएव साधन कीमत कारण तथा सीमान्त उत्पादकता परिणाम हो सकती है।

(9) शोषण का सिद्धान्त (Theory of Exploitation) : प्रो. वोहम बेवरक (Prof. Bohm Bawrick) ने सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि इस सिद्धान्त के अनुसार सीमान्त उत्पादकता के बराबर साधन कीमत मिलने पर भी साधन की अन्तर सीमान्त इकाइयों (Intra & Marginal Units) का शोषण होता है। इसका कारण यह है कि सीमान्त उत्पादकता पर घटते प्रतिफल के नियम (Law of Diminishing Returns) के लाग होने के कारण जैसे–जैसे किसी साधन की अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है, उनकी सीमान्त उत्पादकता कम होती जाती है। इसके फलस्वरूप उनकी कीमत भी कम हो जाती है। इस प्रकार अन्तर सीमान्त इकाइयों की सीमान्त उत्पादकता सीमान्त इकाई से अधिक होने पर भी उन्हें सीमान्त इकाई के बराबर ही कीमत मिलती है, अतएव उनका शोषण होता है।

(10) रोजगार स्तर तथा साधन कीमत के सम्बन्ध में गलत निष्कर्ष (Work Conclusions regarding Factor Pricing and Employment) : लार्ड केन्ज के अनुसार इस सिद्धान्त का यह निष्कर्ष भी गलत है कि साधन कीमतों में कमी करके साधन की अधिक मात्रा को रोजगार प्रदान किया जा सकता है। वास्तव में साधन कीमत, जैसे मजदूरी में कमी होने से मजदूरों की आय कम होगी, इस कारण वस्तुओं की माँग कम होगी। इसके फलस्वरूप साधनों की मांग भी कम हो जाएगी। अतएव साधन कीमत में कमी होने पर साधन की इकाइयों को मिलने वाला रोजगार बढ़ने के स्थान पर कम हो जाएगा।

(11) कुल उत्पादन साधनों की सीमान्त उत्पादकता के जोड़ से अधिक होता है (Total Product is more than the Summation of the Marginal Productivity of Factors) : इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पुरस्कार दिया जाता है। इसका अर्थ यह है कि कुल उत्पादन सभी साधनों की सीमान्त उत्पादकता के जोड़ के बराबर होना चाहिए। परन्तु हाब्सन के अनुसार जब बढ़ते प्रतिफल का नियम लागू हो रहा हो तो कुल उत्पादन सीमान्त उत्पादकता के जोड़ से अधिक होता है। यह अधिक उत्पादन सब साधनों के सहयोग के कारण होता है।

साधन कीमत का आधुनिक सिद्धान्त

(Modern Theory of Factor Pricing)

साधन कीमत के आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक साधन की कीमत उस की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होती प्रो. लिप्सी ने इस सम्बन्ध में ठीक ही कहा है कि, ''उत्पादन के साधनों का कीमत सिद्धान्त, कीमतों के सिद्धान्त की एक विशेष अवस्था है। हम पहले साधनों के माँग के सिद्धान्त का विकास करते हैं, उसके पश्चात् साधनों की पूर्ति के सिद्धान्त का विकास करते हैं और अन्त में इन्हें सन्तलन कीमतों तथा मात्राओं के निर्धारण के सिद्धान्त में मिला देते हैं।'' (The Theory of factor price is just a special case of the theory of price- We first develop a theory of the demand for factors then a theory of the supply of the factors and finally combine them into a theory of determination of equilibrium price and Quantities. —Lipsey and Stenier) अतएव साधन कीमत निर्धारण का अध्ययन करने के लिए साधन की माँग तथा पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का अध्ययन करना आवश्यक है।

(1) साधनों की माँग व्युत्पन्न माँग (Derived Demand)

साधनों की माँग व्युत्पन्न माँग (Derived Demand) है। इनकी माँग इनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की माँग पर निर्भर करती है। कपड़े के कारखाने में श्रमिकों की माँग कपड़े की माँग कम है तो श्रमिकों की मांग भी कम होगी। एक फर्म लाभ – प्राप्त करने की दृष्टि से उत्पादन करती है, अतएव वह साधन को काम पर लगाते समय उस साधन की उत्पादकता को अवश्य ध्यान में रखती है। किसी साधन की अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से अन्य साधन स्थिर रहने पर कुल आय उत्पादकता में जितनी वृद्धि होती है, उसे साधन की सीमान्त आय उत्पादकता कहा जाता है। एक फर्म द्वारा किसी साधन की माँग उस सीमा तक ही की जाती है जिस पर उस साधन की सीमान्त कीमत तथा सीमान्त आय उत्पादकता बराबर हो जाती है। अतएव सीमान्त उत्पादक वक्र ही एक फर्म के लिए किसी साधन का माँग वक्र होता है।

एक उद्योग का साधनों के लिए माँग वक्र फर्मों के माँग वक्र का समस्तर जोड़ नहीं है। इसका कारण यह है कि जब मजदूरी की दर में परिवर्तन होता है तो वस्तुओं की लागत में भी परिवर्तन होता है। इसके फलस्वरूप वस्तु की कीमत अर्थात् औसत आय और सीमान्त आय में भी परिवर्तन होगा। इसके फलस्वरूप सीमान्त आय उत्पादकता वक्र भी अपनी वर्तमान स्थिति से ऊपर या नीचे की ओर चली जाएगी। इसके फलस्वरूप फर्मों की साधन के लिए सन्तुलन माँग बिन्दु अपने स्थान से नई सीमान्त उत्पादकता वक्र पर ऊपर या नीचे की ओर खिसक जाएगा। इन सन्तुलन बिन्दुओं को जोड़कर फर्म की माँग वक्र ज्ञात की जा सकती है। एक उद्योग की विभिन्न फर्मों के माँग वक्रों को जोड़कर उद्योग के माँग वक्र का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, जैसा रेखाचित्र 6.5 में दिखाया गया है। रेखाचित्र 6.5 में OX अक्ष पर श्रम तथा OY अक्ष पर मजदूरी और सीमान्त आय उत्पादकता को प्रकट किया गया है। क्क उद्योग की साधन माँग वक्र है। इसका ढलान ऊपर से नीचे की ओर है। उत्पादन के साधन की मांग

चित्र 6.5

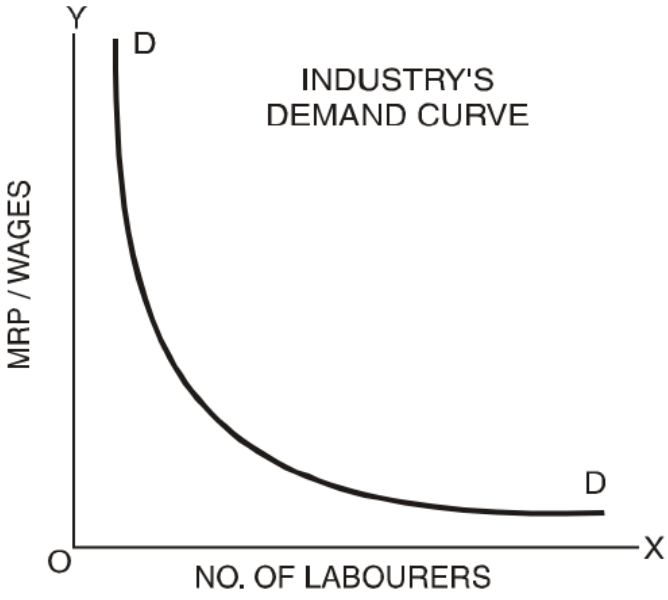

पर उनकी माँग की लोच (Elasticity oif Demand) का भी काफी प्रभाव पड़ता है। यदि साधन की माँग लोचदार है तो साधन की कीमत में थोड़ी–सी भी कमी होने पर उसकी माँग में काफी वृद्धि होगी तथा कीमत में थोड़ी सी वृद्धि होने पर माँग में काफी कमी होगी। इसके विरीत यदि साधन की माँग बेलाचदार है तो उसकी कीमत में बहुत अधिक वृद्धि होने पर उसकी माँग में थोड़ी–सी कमी होगी। अतएव उत्पादन के साधनों की कीमत में हाने वाले परिवर्तन का उनकी माँग पर पड़ने वाला प्रभाव साधनों की माँग की लोच पर निर्भर करता है। साधनों की माँग की लोच निम्नलिखित तथ्यों पर निर्भर करती हैः

(1) उत्पादित वस्तु की माँग की लोच (Elasticity of the Product):– उतपादन के साधन की माँ व्युत्पन्न (Derived) होती है। प्रत्येक साधन की माँग किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिए की जाती है। अतएव के साधन की लोच उस वस्तु की माँग की लोच पर निर्भर करती है जिसके उत्पादन में वह सहायक होती है, यदि उस वस्तु की माँग लोचदार है तो साधन की मांग भी लोचदार होगी। इसके विपरीत यदि उस वस्त की माँग बेलोचदार है तो साधन की माँग **बेलोचदार** होगी, अर्थात् कीमत के बढ़ने पर माँग में कोई विशेष कमी नहीं होगी। इसके विपरीत यदि किसी साधन पर उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल लागत का अधिक भाग खर्च किया जाता है तो उस साधन की माँग **लोचदार** होगी अर्थात् साधन की कीमत में थोडी–सी भी कमी आ जाने पर माँग में बहुत अधिक वृद्धि होने की संभावना होगी।

(2) साधन की मात्रा (Quantity of the Factor):–साधन की माँग की लोच इस बात पर भी निर्भर करती है कि किसी वस्तु के उत्पादन पर किए जाने वाले कुल खर्च का कितना भाग उस साधन पर खर्च किया जाता है। यदि कुल लागत का उस साधन पर केवल थोड़ा–सा भाग खर्च किया जाता है तो उस साधन की माँग बेलोचदार होगी, अर्थात् कीमत के बढ़ने पर माँग में कोई विशेष कमी नहीं होगी। इसके विपरीत यदि किसी साधन पर उसके द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल लागत का अधिक भाग खर्च किया जाता है तो उस साधन की माँग लोचदार होगी अर्थात् साधन की कीमत में थोडी–सी भी कमी आ जाने पर माँग में बहुत अधिक वृद्धि होने की संभावना होगी।

(3) साधनों की प्रतिस्थापन्नता (Substitubility between Factors):– यदि एक साधन का दूसरे साधन से प्रतिस्थापन किया जा सकता है तो उस साधन की माँग लोचदार होगी। इसके विपरीत यदि उस साधन का किसी विशेष प्रयोग में दूसरे साधन से प्रतिस्थापन नहीं किया जा सकता तो उस साधता तो उस साधन की माँग बेलाचदार होगी।

संक्षेप में, उत्पादन के साधनों की माँग उनकी उत्पादकता के लिए की जाती है। अतएव साधन की माँग की ओर से उनकी कीमत पर साधन की सीमान्त उत्पादकता का प्रभाव पड़ता है।

(2) साधन की पूर्ति (Supply of the Factor)

उत्पादन के विभिन्न साधनों की पूर्ति से अभिप्राय यह है कि एक निश्चित कीमत पर उस साधन की कितनी इकाइयां बाजार में बिकने के लिए उपलब्ध होती हैं। वस्तुओं से सम्बन्धित पूर्ति के नियम (Law of Supply) से ज्ञात होता है कि किसी वस्तु की कीमत बढ़ने पर उसकी पूर्ति बढ़ती है तथा कीमत कम होने पर उसकी पूर्ति कम होती है। परन्तु उत्पादन के सभी साधनों पर पूर्ति का यह नियम हर अवस्था में लागू नहीं होता। उत्पादन के साधनों की पूर्ति भिन्न–भिन्न तत्त्वों पर निर्भर करती हे अतएव हम विभिन्न साधनों की पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का अध्ययन अलग–अलग करेंगे।

(1) भूमि की पूर्ति (Supply of Land)–एक अर्थव्यवस्था के लिए भूमि की पूर्ति पूर्णतः बेलोचदार (Perfectly Inelastic) होती है अर्थात् एक अर्थव्यवस्था में भूमि की कुल पूर्ति में कोई वृद्धि नहीं की जा सकती। अर्थव्यवस्था में भूमि की पूर्ति निःशुल्क (थ्तमम) है, उसकी कोई उत्पादन लागत नहीं होती। एक उद्योग के लिए भूमि की पूर्ति उसकी अवसर लागत (Opportunity Cost) पर निर्भर करती है। यदि किसी उद्योग में दूसरे उद्योग की तुलना में

पूर्ति की अवसर लागत बढ़ जाती है तो दूसरे उद्योगों के स्थान पर भूमि का उस उद्योग में अधिक प्रयोग किया जाने लगेगा। अतः एक उद्योग के लिए भूमि की पूर्ति वक्र नीचे से ऊपर की ओर उठती हुई होगी। अर्थात् कीमत के बढ़ने पर भूमि की पूर्ति बढ़ेगी तथा कीमत के कम होने पर भूमि की पूर्ति कम होगी। एक कर्म के लिए भूमि की पूर्ति पूर्णतया लोचदार (Perfectly Elastic) होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत पर फर्म कितनी भी भूमि का प्रयोग कर सकती है।

(2) श्रम की पूर्ति (Supply of Labour)–श्रम की पूर्ति से अभिप्राय यह है कि एक निश्चित मजदूरी दर पर एक श्रमिक कितने घण्टे के लिए अपना श्रम बेचने के लिए तैयार है। श्रम की पूर्ति अर्थात् काम के घण्टों और श्रम की मजदूरी में कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं है। साधारणतया यह देखा गया है कि यह निश्चित सीमा तक मजदूरी अर्थात् श्रम की कीमत बढ़ने पर श्रम की पूर्ति में वृद्धि होती है। परन्तु मजदूरी की एक निश्चित सीमा के पश्चात् जैसे–जैसे मजदूरी बढ़ती जाती है श्रमिक काम के स्थान पर आराम (Leisure) को अधिक पसन्द करते हैं। इसलिए मजदूरी की दर बढ़ने पर श्रम की पूर्ति कम होती जाती है। श्रम का पूर्ति वक्र जैसा कि रेखाचित्र नं. 6.6 में दिखाया गया है, पीछे की ओर मुड़ा हुआ (Backward Sloping) होता है। रेखा चित्र नं. 6.6 में SS पीछे मुड़ा हुआ पूर्ति वक्र है। इससे प्रकट होता है कि OW तक मजदूरी बढ़ने पर श्रम की पूर्ति बढ़ रही है परन्तु जब मजदूरी की दर OW से बढ़कर OW हो जाती है तो श्रम की पूर्ति व्छ से कम होकर ON_1 हो जाएगी।

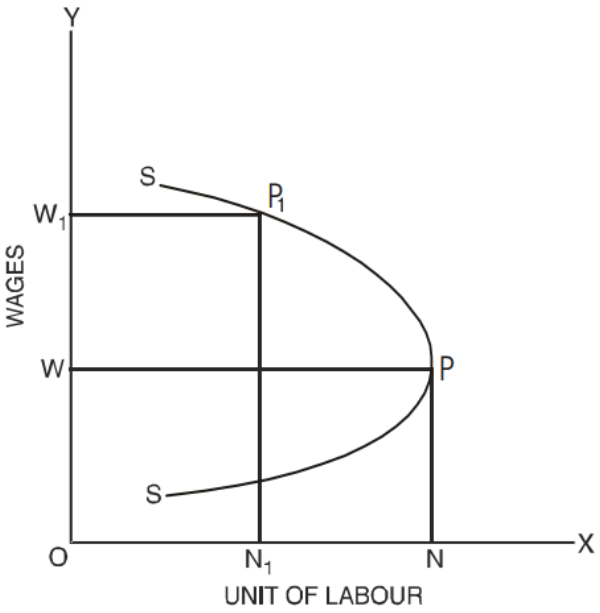

चित्र 6.6

(3) पूँजी की पूर्ति (Supply of Capital)–पूँजी की पूर्ति बचत पर निर्भर करती है। पूँजी की कीमत को ब्याज (Interest) कहा जाता हैं। परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का यह विचार था कि ब्याज की दर बढ़ने पर बचत की मात्रा बढ़ेगी तथा ब्याज की दर कम होने पर बचत की मात्रा कम होगी अतएव पूँजी का पूर्ति वक्र नीचे से ऊपर की ओर उठता हुआ होगा।

(4) उद्यमी की पूर्ति (Supply of Entrepeneurs)–उद्यमी की पूर्ति तथा उसकी कीमत अर्थात् लाभ में भी कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं है है। उद्यमी की पूर्ति लाभ के अतिरिक्त बहुत–से अनार्थिक तत्त्वों (Noneconomic Factors) पर भी निर्भर करती है।

संक्षेप में, यह कहा जाता है कि साधनों की पूर्ति के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता। परन्तु साधारणतया विश्लेषण की सरलता की दृष्टि से हम यह मान लेते हैं कि साधनों की पूर्ति वक्र का ढलान धनात्मक (Positive) अर्थात् ऊपर की ओर उठा हुआ होता है।

साधन की कीमत का निर्धारण (Determination of Factor Price)

आधुनिक सिद्धान्त के अनुसार, ''उत्पादन के किसी भी साधन की कीमत वहीं तय होगी, जहाँ साधन की माँग और पूर्ति बराबर हैं अर्थात् सन्तुलन में है।''

पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में किसी साधन जैसे श्रम की कीमत जैसा कि रेखाचित्रा 6.7 द्वारा दिखाया गया है, उसकी माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होगी। चित्रा 6.7 में OX अक्ष पर श्रम की इकाइयाँ तथा OY अक्ष पर मजदूरी प्रकट की गयी है। DD श्रम की माँग वक्र तथा SS श्रम की पूर्ति वक्र है। श्रम की माँग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र SS एक–दूसरे को E बिन्दु पर काट रहे हैं अतएव E बिन्दु माँग और पूर्ति के सन्तुलन को प्रकट कर रहा है। श्रम की मजदूरी OW निर्धारित होगी। मजदूरी की OW दर पर ON श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होगा। यदि मजदूरी की दर बढ़कर OW_1 हो जाती है तो श्रम की पूर्ति ON_2 होगी तथा माँग कम होकर ON_1 हो जाएगी। श्रम की पूर्ति के माँग से अधिक होने के कारण मजदूरी की दर कम होकर फिर OW हो जाएगी, इसके विपरीत यदि मजदूरी कम होकर OW_2 हो जाती है तो श्रम की माँग ON_3 होगी तथा पूर्ति कम होकर ON_4 हो जाएगी। इसके फलस्वरूप मजदूरी की दर बढकर OW हो जाएगी। उत्पादन के साधनों की कीमत माँग तथा पूर्ति के सन्तुलन बिन्दु पर निर्धारित होती है।

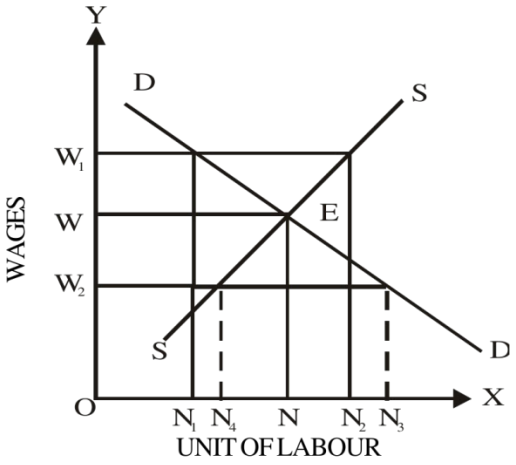

चित्र 6.7

संक्षेप में, साधन कीमत माँग तथा पूर्ति के सन्तुलन बिन्दु पर निर्धारित होती है। साधन की पूर्ति स्थिर रहने पर माँग के बढने पर कीमत बढ़ती है तथा माँग के कम हो जाने पर कीमत कम हो जाती हैं। साधन माँग पर सीमान्त आय उत्पादकता का प्रभाव पड़ता है। इसके निर्धारित साधन की माँग के स्थिर रहने पर साधारणतया पूर्ति के बढ़ने पर साधन की कीमत कम होती है तथा पूर्ति के कम हो जाने पर कीमत बढ़ जाती है। साधनों की पूति पर उनकी अवसर लागत कम प्रभाव पड़ता है।

एकाधिकार में मजदूरी निर्धारण

(Wage Determination Under Monopoly)

एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है जिसमें केवल आपूर्तिकर्ता (Supplier) होता है। श्रम बाजार में सभी श्रमिक अपने आपको एक मजदूर संघ (Trade Union) में संगठित कर सकते हैं। इस प्रकार मजदूर संघ का श्रम की पूर्ति में एकाधिकार होता है। मजदूर संघ को श्रम के लिए माँग वक्र का सामन करता है, क्योंकि श्रम की पूर्ति का मजदूर संघ एक मात्र स्त्रोत होता है। मजदूर संघ, माँग वक्र पर उस बिन्दु का चुनाव कर सकता है, जहाँ यह मजदूरी का निर्धारण करेगा। मजदूरी का निर्धारण मजदूर संघ के लक्ष्य (Goal) पर निर्भर करेगा। मजदूर संघ के सामने तीन संभव चुनाव (Choice) हो सकते हैं, जिनको कि निम्नलिखित चित्र 6.8 द्वारा स्पष्ट किया गया है :

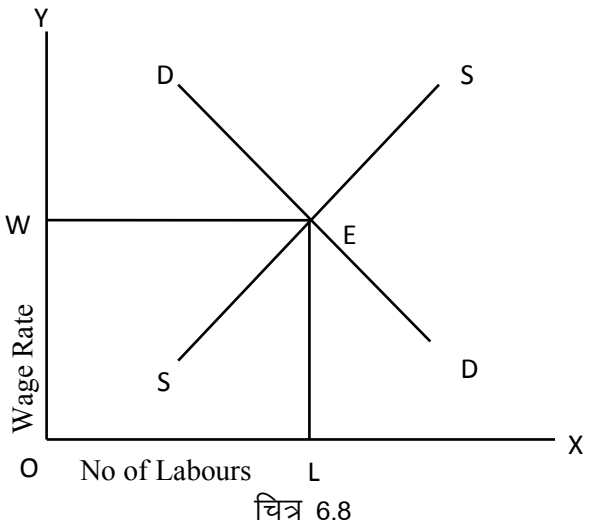

चित्र 6.8

इस रेखाचित्र में श्रम की मात्रा को OX – अक्ष पर और मजदूरी को OY – अक्ष पर दिखाया गया है। SS श्रम की पूर्ति वक्र, DD माँग वक्र (या AR Curve) तथा MR सीमान्त आय वक्र है। मजदूरी निर्धारण की तीन संभावनाएँ हो

सकते हैं। हम यह मान कर चलते हैं कि श्रम की कुल उपलब्ध पूर्ति OL_3 है:

(i) अधिकतम कुल मजदूरी (Maximize Total Wages) मजदूर संघ श्रम की उतनी मात्रा की पूर्ति करे जिससे कि कुल मजदूरी (WL) अधिकतम हो। इस सम्बन्ध में मजदूर संघ श्रम की उस मात्रा की आपूर्ति करेगा जिस पर श्रम माँग से प्राप्त होने वाली 'सीमान्य आय' शून्य (Zero) है। श्रम की पूर्ति OL तथा मजदूरी–दर OW होगी। बिन्दु E, सन्तुलन बिन्दु होगा। जिस पर कि श्रम की माँग तथा पूर्ति बराबर है। परन्तु इस मजदूरी दर पर LL, श्रमिक अभी भी बेरोजगार हैं।

(ii) अधिकतम कुल आर्थिक लगान (Maximise Total Economic Rent)–मजदूर संघ श्रम की उस मात्रा की भी आपूर्ति कर सकता है जिस पर रोजगार प्राप्त श्रमिकों को प्राप्त होने वाला आर्थिक लगान (मजदूरी–अवसर लागत) अधिकतम है। संघ को OW, मजदूर दर पर श्रम की OL, मात्रा की आपूर्ति करनी चाहिए। रेखाचित्र में बिन्दु E, वांछित–मात्रा संयोग (Desired Wage & Quantity Combination) को प्रकट करता है।

श्रम की OL_2 मात्रा पर संघ द्वारा एक अतिरिक्त सदस्य या श्रमिक को लगाने से कुल मजदूरी में होने वाली वृद्धि (सीमान्त आय) उस श्रमिक को बाजार में पूर्ति की लागत के बराबर हो जाए। OW_2 मजदूरी दर पर L_2 L_3 श्रमिक जो काम के इच्छुक हैं, वे बेरोजगार रह जाते हैं।

(iii) अधिकतर रोजगार (Maximise Employment)– मजदूर संघ OW_3 मजदूरी दर भी निश्चित कर सकता है। इस मजदूरी दर सभी श्रमिक अर्थात् OL_3 रोजगार प्राप्त कर लेंगे। यह वह मजदूरी दर है जिसका निर्धारण पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में भी होता है।

संक्षेप में, एकाधिकार में मजदूरी का निर्धारण एकाधिकारी के उद्देश्य पर निर्भर करेगा। यदि एकाधिकारी प्रतियोगी मजदूर दर से ऊँची मजदूरी दर निर्धारित करता है, तब कुछ बेरोजगारी बनी रहेगी।

एकाधिकारी कब मजदूरी बढ़ा सकता है?

(When can the Monopolist Get the Wages Raised?)

श्रम संघों (Trade Unions) के रूप में संगठित होकर श्रमिक अधिक मजदूरी की माँग करते हैं। ट्रेड यूनियनें, हड़ताल, धरने, घेराव आदि उपायों द्वारा मालिकों को मजदूर बढ़ाने के लिए मजबूर करती हैं। परन्तु यूनियनें केवल एक सीमा तक मजदूरी बढ़वाने में सफल हो सकती हैं। एक सीमा के पश्चात् यदि वे मजदूरी बढ़वाने का प्रयत्न करेंगी तो मजदूर बेरोजगार हो सकते हैं।

हम जानते हैं कि एक फर्म उतने श्रमिकों को ही रोजगार प्रदान करती है जिनकी सीमान्त आगम उत्पादकता (MRP) उनकी मजदूरी के बराबर होती है। अतएव उद्योग में लगाये गये सीमान्त मजदूर को दी गई मजदूरी उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता के बराबर होनी चाहिए। रोजगार के बढ़ने पर सीमान्त आगम उत्पादकता कम होती जाती है इसलिए सीमान्त आगम उत्पादकता वक्र का ढलान ऊपर से नीचे की ओर होता है। इन शर्तों के होने पर यूनियनें निम्नलिखित स्थितियों में मजदूरी बढ़वा सकती हैं:

(1) जब मजदूरी की वर्तमान दर सीमान्त आगम उत्पादकता से कम होती है (When existing wage rate is less than MRP_L): जब मजदूरी की वर्तमान दर मजदूरों के सीमान्त आगम से कम है ($W<MRP_1$)। ट्रेड यूनियन, मालिकों को श्रमिकों की सीमान्त आगम उत्पादकता के बराबर मजदूरी देने के लिए मजबूर कर सकती है श्रीमती रॉबिन्सन के अनसार, वह स्थिति जिसमें मजदूरी की दर श्रम की सीमान्त आगम उत्पादकता में कम ($W < MRP$) होती है, श्रम के शोषण की स्थिति होती है।

(2) उत्पादकता में वृद्धि (Increase in Productivity)– यदि मजदूरी की दर बढ़ने से उत्पादकता में वृद्धि होती है तो ट्रेड यूनियन मालिकों को श्रम की वर्तमान सीमान्त आगम उत्पादकता से अधिक मजदूरी देने के लिए बाध्य करने में सफल हो सकती हैं। इस स्थिति में वह मजदूरी बढ़वाने में सफल हो जायेगी। चित्र 6.9 से ज्ञात होता है कि श्रम की MRP, वक्र के ऊपर की ओर खिसकने अर्थात् श्रम की उत्पादकता बढ़ने के फलस्वरूप रोजगार में वृद्धि होने पर भी मजदूरी की दर में वृद्धि सम्भव हो सकेगी। जब MRP_L ऊपर की ओर खिसक कर MRP_L हो जाती है तो श्रम की माँग OL_1 से बढ़कर OL_1 हो गई है जबकि मजदूरी की दर OW_1 से बढ़ कर OW, हो जाती है।

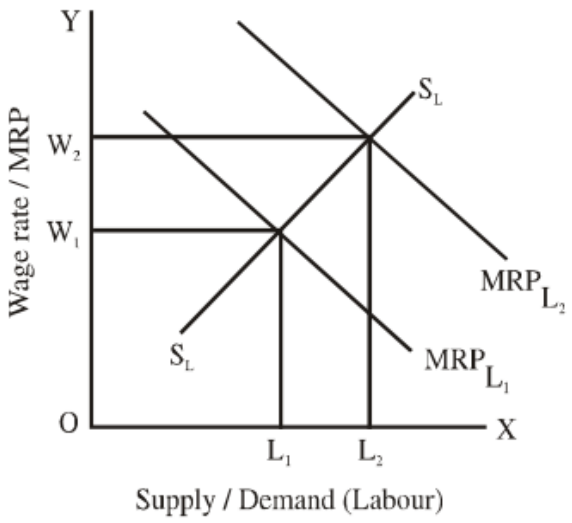

चित्र 6.9

(3) बेलोचदार माँग (Inelastic Demand) यदि श्रमिकों Y द्वारा उत्पादित वस्तुओं की माँग बेलोचदार है तो उनकी मजदूरी में वृद्धि होने से वस्तु की कीमत में जो वृद्धि होगी उसे कीमत वृद्धि के रूप में उपभोक्ताओं पर टाला जा सकेगा। इस प्रकार मजदूरी में होने वाली वृद्धि का भार मालिकों को नहीं उठाना पड़ेगा तथा यूनियनें मजदूरी बढ़वाने में सफल हो जायेंगी।

(4) अन्य श्रमिकों की मजदूरी में कमी की सम्भावना (Wages of Other Type of Labour Can be Squeezed) यूनियनें उन श्रमिकों की मजदूरी बढ़वाने में सफल हो सकती हैं जिनकी माँग बेलोचदार होती है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब उन मजदूरों (जिनकी माँग लोचदार है) की मजदूरी को कम किया जा सके।

(5) अन्य साधनों की कीमत में कमी की सम्भावना (When Other Factor Payment can be Squeezed) अन्य साधनों के शोषण अर्थात् उनकी कीमत कम किए जाने की सम्भावना है तो यूनियनें मजदूरी में वृद्धि करा सकेंगी। यह तभी सम्भव है यदि अन्य साधनों की माँग लोचदार है।

(6) अधिक लाभ (Abnormal Profit)–यदि उद्योग अधिक लाभ कमा रहा हो तो यूनियनें मालिकों को मजबूर कर सकती हैं कि वे उस लाभ का कुछ भाग मजदूरी में वृद्धि अथवा बोनस के रूप में मजदूरों को दें।

यदि उपरोक्त शर्ते पूरी नहीं होती तो मजदूरी बढ़ने के फलस्वरूप बेरोजगारी में वृद्धि होगी जैसा कि रेखाचित्र 6.10 से ज्ञात होता है।

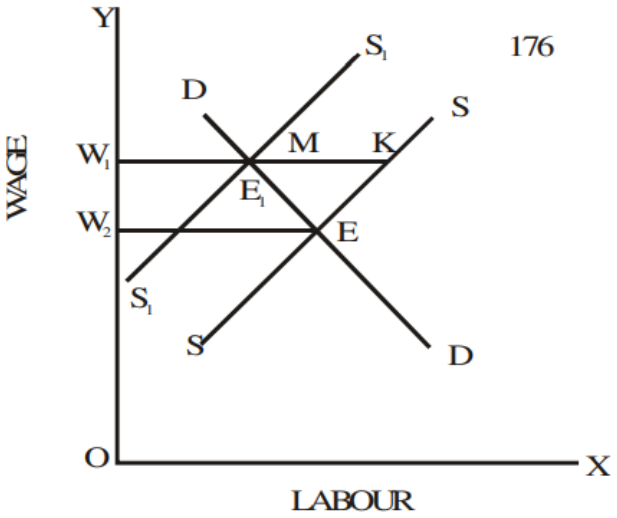

चित्र 6.10

SS श्रम की प्रारम्भिक पूर्ति वक्र है तथा DD श्रम की माँग वक्र है। ये दोनों वक्र E बिन्दु पर एक–दूसरे को काट रहे हैं। इसलिए त पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में OW मजदूरी की दर निर्धारित होगी तथा WE श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होगा। यदि श्रम संघ श्रमिकों की पूर्ति में कटौती करते हैं तो नया पूर्ति वक्र S_1S_1 होगा जो कि श्रम की माँग वक्र DD को E_1 बिन्दु पर काटता है। इसलिए E_1 नया सन्तुलन बिन्दु होगा। इस नये सन्तुलन बिन्दु

से स्पष्ट है कि मजदूरी दर बढ़कर OW_1 हो जायेगी। परन्तु रोजगार की मात्रा में MK की कमी हो जाएगी अर्थात् अब केवल W_1M श्रमिकों को रोजगार प्राप्त होगा।

श्रम का शोषण
(Exploitation of Labour)

श्रीमती रोबन्सन, प्रो. पीगू आदि अर्थशास्त्रियों के अनुसार एकाधिकार दशा वाले बाजारों में श्रम का शोषण (Exploitation) होता है।

श्रम के शोषण से अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें किसी साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता से कम कीमत पर रोजगार प्राप्त होता है। (Exploitation of a labour refers to a situation in which it is employed at a price that is less than its margional productivity.) शोषण की मात्रा सीमान्त उत्पादकता के मूल्य तथा औसत मजदूरी के अन्तर पर निर्भर करती है

$$Ex = VMP–AW$$

(यहाँ Ex=शोषण; VMP=सीमान्त उत्पादकता मूल्य; AW= औसत मजदूरी)

परिभाषा
(Definition)

(i) मिल्लर के शब्दों में, ''शोषण से अभिप्राय है कि उत्पादन के साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम भुगतान किया जाता है।'' (Exploitation is defined as paying a factor of production less than the value of marginal product-—Miller)

(ii) जॉन सोल्मन के शब्दों में, ''क्रेताधिकार वह बाजार है जिसमें केवल एक क्रेता या एक नियोजक होता है।''

(Monopsony is a market with a single bouyer or employer—Solom)

हम क्रेताधिकार (Monopsony) की स्थिति में श्रम के शोषण का अध्ययन करेंगे।

क्रेताधिकार बाजार की वह दशा है जिसमें उत्पादन के साधनों का केवल एक ही क्रेता होता है। उदाहरण के लिए किसी क्षेत्र में रोजगार देने वाली अर्थात् श्रमिकों की सेवाएँ खरीदने वाली एक ही कम्पनी हो सकती है। इसलिए क्रेताधिकार से अभिप्राय बाजार की उस अवस्था से है जिसमें केवल एक ही फर्म साधनों की सेवाएँ खरीदती है।

यदि क्रेताधिकार साधन की माँग अधिक करेगा तो साधन कीमत बढ़ेगी। इसके विपरीत यदि वह साधन की कम माँग करेगा तो साधन की कीमत कम होगी। इसके फलस्वरूप क्रेताधिकार की स्थिति में औसत साधन लागत वक्र (AFC) तथा सीमान्त साधन लागत वक्र (MFC) केवल अलग–अलग ही नहीं होगी बल्कि नीचे से ऊपर की ओर उठ रही होगी। क्रेताधिकार की स्थिति में साधन कीमत निर्धारण का अध्ययन दो स्थितियों में किया जा सकता है।

साधन बाजार में क्रेताधिकार तथा उत्पाद बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता
(Monopoly in Factor in Market and Perfect Competition in Produce Market)

क्रेताधिकार की स्थिति में साधन कीमत निर्धारण की व्याख्या एक उदाहरण की सहायता से की जा सकती है। मान लीजिए उत्पादन का साधन श्रम है तथा साधन बाजार में केवल एक ही फर्म है जो श्रमिक इसके विपरीत वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है। इस फर्म की श्रमिकों के लिए जैसे–जैसे माँग बढ़ती जाती है उनकी सीमान्त

मजदूरी या सीमान्त साधन लागत (MW or MFC) तथा औसत मजदूरी या औसत साधन लागत (AW or AFC) भी बढ़ती जाएगी। MW वक्र तथा AW वक्र दोनों का ही ढलान ऊपर की ओर होगा और MW वक्र AW वक्र की तुलना में अधिक तेजी से ऊँचा उठेगा। अर्थात् सीमान्त मजदूरी वक्र औसत मजदूरी वक्र की तुलना में अधिक ऊँचा होगा। यह ध्यान रखना चाहिए कि यहाँ AW या AFC वक्र श्रम का पूर्ति वक्र है तथा VMP/MRP वक्र श्रम का माँग वक्र है। पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP) तथा सीमान्त आय उत्पादकता बराबर (MRP=VMP) होती है। इसलिए सीमान्त आय उत्पादकता का मूल्य वक्र या सीमान्त आय उत्पादकता वक्र (VMP or MrP Curve) एक ही होते हैं।

वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होने के कारण तथा उत्पाद पर घटते–बढ़ते प्रतिफल का नियम (Law of Variable Proportion) लागू होने के फलस्वरूप सीमान्त आय उत्पादकता वक्र तथा सीमान्त उत्पादकता का मूल्य वक्र केवल अलग–अलग ही नहीं होते बल्कि नीचे की ओर गिर रहे होते हैं। क्रेताधिकार की अवस्था में भी एक फर्म श्रमिकों की केवल उस संख्या को काम पर लगाएगी जिस पर श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (VMP) तथा सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) तथा उन्हें दी जाने वाली सीमान्त मजदूरी (MW) बराबर हो जाती है। यह सन्तुलन की अवस्था होगी। इस स्थिति में जो औसत मजदूरी दी जाती है वह साधन की कीमत होगी। औसत मजदूरी के सीमान्त मजदूरी अथवा सीमान्त आय उत्पादक से कम होने के कारण, श्रमिकों को सीमान्त उत्पादकता से कम मजदूरी मिलेगी। इस प्रकार क्रेताधिकार की अवस्था में श्रमिकों का शोषण होगा। साधन के शोषण से अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें किसी साधन को उसकी सीमान्त उत्पादकता से कम कीमत पर रोजगार प्राप्त होता है। (Exploitation of a factor refers to a situation in which it is employed at a price that is less than its marginal productivity.)

शोषण की मात्रा सीमान्त आय उत्पादकता तथा औसत मजदूरी या साधन कीमत के अन्तर पर निर्भर करती है। इसे रेखाचित्र 11 द्वारा स्पष्ट किया गया है।

रेखाचित्र 6.11 में OX अक्ष पर श्रमिकों की संख्या तथा OY अक्ष पर उत्पादकता तथा मजदूरी को प्रकट किया गया है। MW सीमान्त मजदूरी वक्र तथा AW औसत मजदूरी वक्र है। VMP=MRP सीमान्त उत्पादकता का मूल्य या सीमान्त आय उत्पादकता वक्र है।

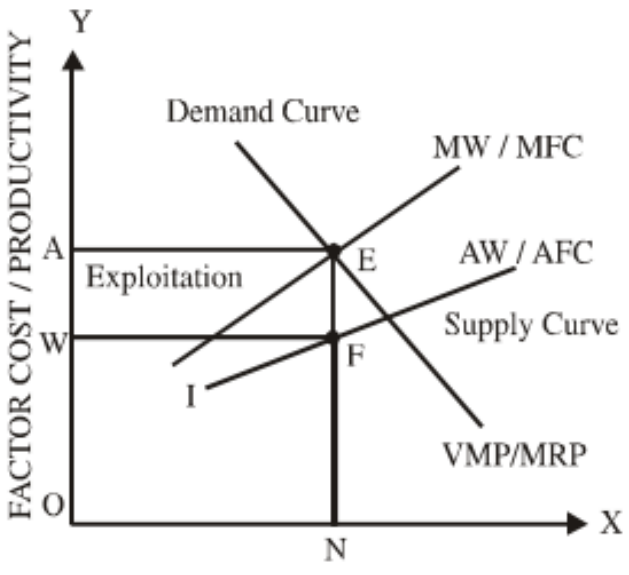

चित्र 6.11

एक क्रेताधिकार श्रमिकों की उस संख्या को रोजगार प्रदान करेगा जिस पर सीमान्त मजदूरी (MW) तथा सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) बराबर होगी। इसे रेखाचित्र से ज्ञात होता है कि E बिन्दु पर फर्म सन्तुलन की अवस्था में होगी। बिन्दु E पर क्योंकि MW=MRP or VMP अतएव इस अवस्था में उद्यमी ON श्रमिकों को रोजगार देगा। ON श्रमिकों को NF मजदूरी दी जायेगी जैसा कि औसत मजदूरी वक्र (AW Curve) के बिन्दु से ज्ञात होता है। अतएव ON मजदूरों को उनकी सीमान्त उत्पादकता EN से कम FN मजदूरी मिलेगी। क्रेताधिकारी फर्म को EF (EN– FN) प्रति श्रमिक लाभ होगा। यह लाभ श्रमिकों के शोषण के कारण उत्पन्न हुआ है। कुल लाभ की मात्रा WEFA श्रम के शोषण (Exploitation of Labour) उत्पन्न होती है। कुल लाभ या कल शोषण WFEA होगा।

साधन बाजार में क्रेताधिकार तथा उत्पाद बाजार में एकाधिकार

(Monopoly in the Factor Market and Monopoly in the Product Market)

हम उपरोक्त विश्लेषण में उत्पाद बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता के स्थान पर एकाधिकार की स्थिति की भी विवेचना कर सकते हैं। एकाधिकार की स्थिति में सीमान्त आय उत्पादकता (MRP), सीमान्त उत्पादकता के मूल्य (VMP) से भिन्न होती है। इसलिए इस स्थिति में शोषण की मात्रा ज्ञात करने के लिए सीमान्त उत्पादकता के मूल्य (VMP) के स्थान पर सीमान्य आय उत्पादकता की धारणा का प्रयोग किया जाता है।

चित्र 6.12 में MRP वक्र सीमान्त आय उत्पादकता वक्र है तथा VMP वक्र सीमान्त भौतिक उत्पादकता का मूल्य वक्र है।

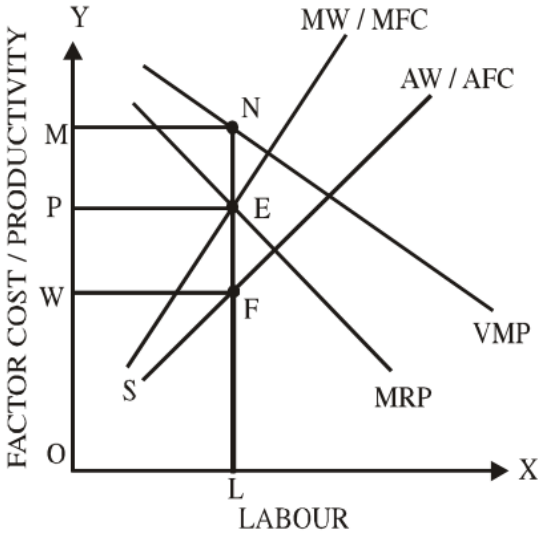

चित्र 6.12

एकाधिकार की स्थिति में MRP तथा VMP बराबर नहीं होती।

एक उद्यमी श्रमिकों की उस संख्या को रोजगार प्रदान करेगा जिस पर सीमान्त मजदूरी (MW) तथा सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) बराबर होगी। इस रेखाचित्र से ज्ञात होता है कि E बिन्दु पर फर्म सन्तुलन की अवस्था में होगी। बिन्दु E पर क्योंकि MW=MRPI इस अवस्था में उद्यमी OL श्रमिकों को रोजगार देगा। OL श्रमिकों को OW (FL) मजदूरी दी जाएगी जैसा कि औसत मजदूरी वक्र (AW Curve) के F बिन्दु से ज्ञात होता है कि श्रमिकों को FL मजदूरी मिलेगी जो सीमान्त उत्पादकता के मूल्य (VMP) NL से कम है। अतएव श्रमिक का NL–FL= NR के बराबर शोषण होगा। कुल शोषण WFNM के बराबर होगा। इसमें से एकाधिकार के कारण होने वाला शोषण (VMP–MRP)=NL होगा तथा क्रेताधिकार के कारण होने वाला शोषण (MRP–OW) = EF होगा। इसलिए कुल शोषण WFNM के बराबर होगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उत्पाद बाजार में एकाधिकार होने के फलस्वरूप साधन का शोषण उत्पाद बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में अधिक होता है। चित्र 6.12 द्वारा प्रकट शोषण WFNM चित्र 8 द्वारा प्रकट शोषण WFNM चित्र 6.11 द्वारा प्रकट शोषण। की तुलना में अधिक है।

पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी निर्धारण

(Wage Determination Under Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में सन्तुलित मजदूरी वहाँ पर निर्धारित होगी जहाँ पर किसी साधन की माँग तथा पूर्ति, उद्योग के लिए बराबर हो जाए। अन्य शब्दों में, यहाँ कहा जा सकता है कि पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में दीर्घकाल में श्रमिक को उसकी सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) अथवा सीमान्त भौतिक उत्पादकता के मूल्य (VMP) के बराबर

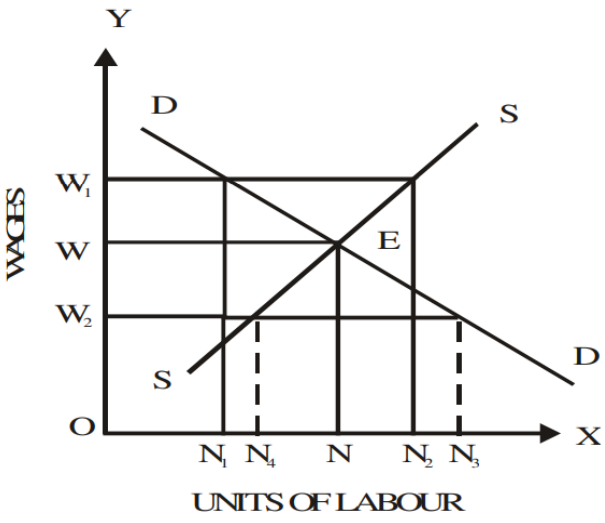

चित्र 6.13

मजदूरी प्राप्त होगी। पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में मजदूरी निर्धारण को रेखाचित्र नं. 6.12 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र नं. 6.12 में OX अक्ष पर श्रमिकों की संख्या तथा OY अक्ष पर मजदूरी प्रकट की गई है। क्क उद्योग के लिए श्रमिकों की माँग वक्र है तथा SS उद्योग के लिए श्रमिकों की पूर्ति वक्र है। बिन्दु E सन्तुलन की अवस्था को प्रकट कर रहा है। इस बिन्दु पर श्रम की माँग तथा पूर्ति एक–दूसरे के बराबर है। अतएव पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में मजदूरी की दर OW निर्धारित D होगी तथा व्छ श्रमिकों को रोजगार प्राप्त हो सकेगा। यदि मजदूरी की दर OW से अधिक होकर OW_1 हो जाए तो श्रमिकों की पूर्ति ON_1 उनकी माँग ON, से अधिक होगी। कुछ श्रमिक बेरोजगार रहेंगे। वे कम मजदूरी पर भी काम करने के लिए तैयार हो जाएंगे। अतएव मजदूरी की दर कम होकर फिर OW हो जाएगी। इसके विपरीत यदि मजदूरी की दर OW से कम होकर OW हो जाती है तो श्रमिकों की माँग ON, उनकी पूर्ति ON से अधिक होगी। माँग अधिक होने के कारण मजदूरी की दर बढ़कर फिर OW हो जाएगी। पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था में जब एक बार उद्योग द्वारा मजदूरी की दर निर्धारित हो जाती है तो प्रत्येक फर्म को मजदरी की इस दर को स्वीकार करना पड़ता है। यही का की वर्तमान दर पर मजूदरी का पूर्ति वक्र पूर्णतया लोचदार है। अतएव एक फर्म बिना मजदूरी की दर में वृद्धि किए हुए मजदूरी की बाजार में प्रचलित दर पर ही जितने चाहे उतने श्रमिकों को रोजगार प्रदान कर सकती है। एक फर्म के सन्तुलन की स्थिति का अध्ययन समय की दो अवधियों में किया जा सकता है :

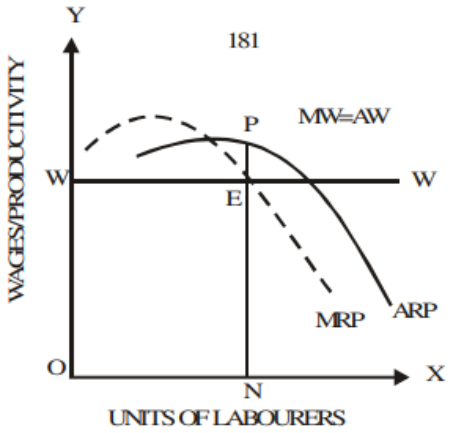

चित्र नं. 6.14

अल्पकाल (Short Period)

अल्पकाल समय की वह अवधि है जिसमें कम से कम किसी एक साधन की पूर्ति स्थिर होती है। अतएव फर्म केवल घटते–बढ़ते साधन जैसे श्रमिकों की संख्या में परिवर्तन करके पूर्ति में परिवर्तन कर सकती है। अतः अल्पकाल में एक फर्म के लिए मजदूरों को रोजगार देने से सम्बन्धित तीन स्थितियां हो सकती हैं :

(i) असामान्य लाभ (Supper Normal Profit)

यदि उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी की दर OW पर फर्म इतने श्रमिकों को रोजगार प्रदान करती है कि उनकी औसत आय उत्पादकता (ARP) मजदूरी की दर से अधिक हो तो फर्म को असामान्य लाभ (Super Normal Profit) प्राप्त होंगे। रेखाचित्र 6.14 से ज्ञात होता है कि फर्म ON श्रमिकों को रोजगार देगी क्योंकि इस स्थिति में जैसा बिन्दु E से ज्ञात होता है MRP=MWA रोजगार के इस स्तर पर श्रमिकों की औसत आय उत्पादकता PN के बराबर है जबकि मजदूरी की दर EN है। अतएव फर्म को PN–EN=PE के बराबर प्रति श्रमिक असामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

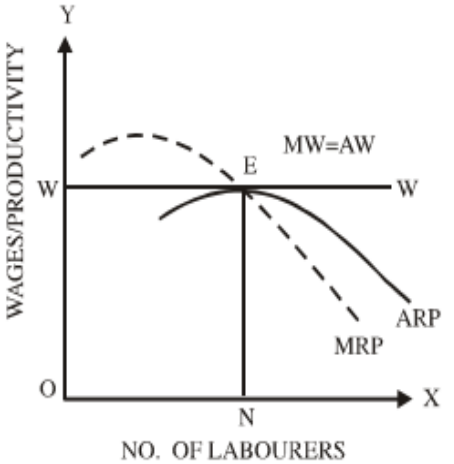

चित्र नं. 6.15

(ii) सामान्य लाभ (Normal Profit)– यदि उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी की दर OW पर फर्म इतने श्रमिकों को रोजगार प्रदान करती है कि उनकी औसत आय उत्पादकता, मजदूरी की दर के बराबर हो तो फर्म को केवल सामान्य लाभ (Normal Profit) प्राप्त होंगे। रेखाचित्र नं. 6.15 से ज्ञात होता है कि जब फर्म ON श्रमिकों को रोजगार दे रही है तो इन श्रमिकों की औसत मजदूरी OW तथा औसत आय उत्पादकता EN के बराबर होगी। अतः फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होंगे।

(iii) हानि (Loss) : यदि उद्योग द्वारा निर्धारित मजदूरी की दर पर फर्म इतने श्रमिकों को रोजगार प्रदान करती है कि उनकी औसत आय उत्पादकता मजदूरी की दर से कम हो तो फर्म को हानि होगी। रेखाचित्र 6.16 से ज्ञात होता है कि जब फर्म ON श्रमिकों को रोजगार दे रही है तो श्रमिकों की औसत मजदूरी OW या EN औसत आय उत्पादकता PN से अधिक है। अतएव फर्म को EN–PN= PE के बराबर प्रति श्रमिक हानि होगी।

दीर्घकाल
(Long Period)

दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में कोई फर्म न तो असामान्य लाभ प्राप्त कर सकता है और न ही हानि उठा सकती है। अतः फर्म सन्तुलन की स्थिति में उस समय होगी जब औसत मजदूरी (AW) सीमान्त मजदूरी (MW), सीमान्त आय उत्पादकता (MRP) तथा औसत आय उत्पादकता (ARP) बराबर होंगे अर्थात् दीर्घकाल में MRP=ARP=AW=MW होगी। रेखाचित्र 6.17 से ज्ञात होता है कि फर्म ON श्रमिकों को रोजगार प्रदान कर रही है। ये इस स्थित में मजदूरों की औसत मजदूरी, सीमान्त आय उत्पादकता तथा औसत आय उत्पादकता के बराबर है। अतएव एक फर्म के सन्तुलन के लिए दो शर्ते पूरी होनी चाहिए।

i) MRP = MW

ii) ARP = AW

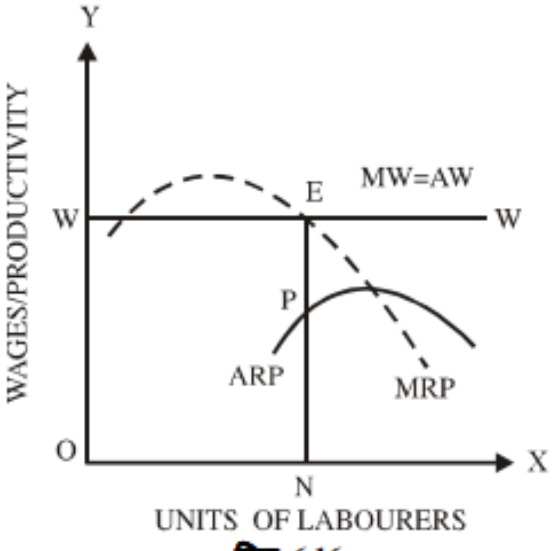

चित्र 6.16

चित्र 6.16 के सन्तुलन बिन्दु E पर ये दोनों शर्ते पूरी हो रही हैं। जबकि बिन्दू R पर केवल एक शर्त अर्थात् MRP=MW पूरी हो रही है। फर्म OM से ON तक जितने श्रमिकों को रोजगार प्रदान करेगी उसके लाभ बढ़ते जाएँगे।

लगान (Rent)

लगान क्या है?–अर्थशास्त्र में लगान शब्द का प्रयोग उत्पादन के उन साधनों को दिए जाने वाले भुगतान के लिए किया जाता है जिनकी पूर्ति अपूर्ण लोचदार होती है। इस सम्बन्ध में प्रमुख उदाहरण भूमि का दिया जाता है। जबकि साधारण बोलचाल की भाषा में लगान या किराया शब्द का प्रयोग उस भुगतान के लिए किया जाता है जो किसी वस्तु जैसे मकान, दुकान, फर्नीचर आदि की सेवाओं का उपभोग करने के लिए नियमित रूप से एक निश्चत अवधि के लिए किया जाता है।

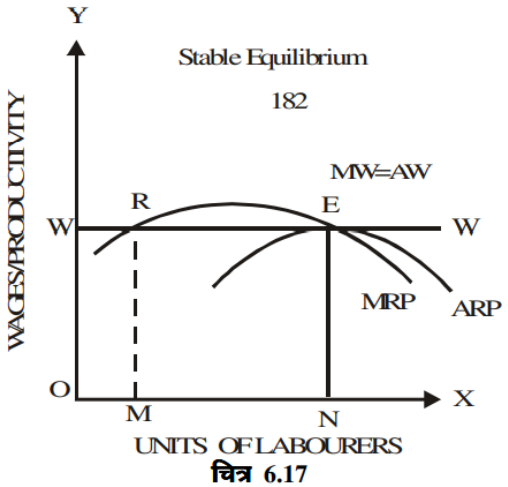

चित्र 6.17

लगान के प्रकार (Types of Rent)

लगान के मुख्य प्रकार निम्नलिखित हैं:

आर्थिक लगान (Economic Rent)

केवल भूमि के प्रयोग के लिए किया जाने वाला भुगतान आर्थिक लगान कहलाता है। अर्थशास्त्र में लगान शब्द का प्रयोग आर्थिक लगान के लिए ही किया जाता है। अतएव रिकार्डो तथा दूसरे परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के

अनुसार, ''आर्थिक लगान वह लगान है जो केवल भूमि की सेवाओं के लिए प्राप्त होता है।'' आर्थिक लगान को आधिक्य (Surplus) भी कहा जाता है क्योंकि वह भू–स्वामी की तरफ से बिना कोई प्रयत्न किए ही प्राप्त होता है। प्रो. बोल्डिंग ने इसे आर्थिक आधिक्य (Economic Surplus) कहा है।

कुल लगान (Gross Rent)

कुल लगान वह लगान है जो भूमि की सेवाओं तथा उस पर लगाई गई पूँजी के लिए दिया जाता है। कुल लगान में निम्नलिखित तत्त्व शामिल होते हैं– (i) आर्थिक लगान–यह केवल भूमि के प्रयोग के लिए किया जाने वाला भुगतान है। (ii) भूमि की उन्नति के लिए अर्थात् भूमि के निकट कुआँ खुदवाने, झोंपड़ी बनवाने, नालियाँ बनवाने आदि पर जो धन व्यय किया जाता है, उसका ब्याज (Interest) कुल लगान में शामिल किया जाता है। (iii) भूमिपति भूमि के सुधार के लिए धन व्यय करके जोखिम उठाता है, इस जोखिम का पुरस्कार भी कुल लगान में शामिल होता है।

दुर्लभता लगान (Scarcity Rent)

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री माल्थस के अनुसार, लगान के उत्पन्न होने का मुख्य कारण भूमि का दुर्लभ होना है अर्थात् भूमि की पूर्ति का माँग से कम होना है। समरूप भूमि की दुर्लभता के कारण जो लगान देना पड़ता है उसे दुर्लभता लगान कहा जाता है। (Scarcity Rent is the price paid for the use of the homogeneous land when its supply is limited in relation to demand)। यदि सब भूमि एक ही प्रकार की हो परन्तु भूमि की माँग उसकी पूर्ति से अधिक हो जाए तो सारी भूमि को दुर्लभता के कारण आर्थिक लगान प्राप्त होगा। इसलिए लगान उस समय ही उत्पन्न होगा जब भूमि की पूर्ति बेलोचदार (Inelastic) होगी अर्थात् माँग के बढ़ने पर पूर्ति को नहीं बढ़ाया जा सकता। रिकार्डो का भी यह मत था कि भूमि लाभप्रद तो है लेकिन दुर्लभ भी है। भूमि की उत्पादकता तो प्रकृति की उदारता का सूचक हो सकती है परन्तु उसकी कुल पूर्ति का लगभग स्थिर रहना प्रकृति की कन्जूसी (Niggardliness) का प्रतीक है।

भेदात्मक लगान (Differential Rent)

रिकार्डो के अनुसार, भूमि का उपजाऊ शक्ति (Fertility) में अन्तर पाए जाने के फलस्वरूप लगान उत्पन्न होता है। प्रत्येक देश में कई प्रकार की भूमि पाई जाती है। कुछ भूमि अधिक उपजाऊ होती है तथा कुछ भूमि कम उपजाऊ होती है। जब कम उपजाऊ भूमि पर भी खेती करनी पड़ती है तो अधिक उपजाऊ भूमि के स्वामी को अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। यह आधिक्य (Surplus) जो भूमि की उपजाऊ शक्ति में भेद (Difference) पाये जाने के कारण उत्पन्न होता है, भेदात्मक लगान कहलाता है। इस प्रकार का भेदात्मक लगान विस्तृत खेती (Extensive Cultivation) में उत्पन्न होता है। रिकार्डो का यह विचार भी था कि यदि एक ही प्रकार की भूमि पर अधिक उत्पादन बढ़ाने के लिए श्रम तथा पूँजी की अधिक मात्राओं का प्रयोग किया जाए अर्थात् गहन खेती (Intensive Cultivation) की जाए तो जैसे–जैसे भूमि के एक निश्चित क्षेत्रफल में पूँजी तथा श्रम की अधिक–से–अधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाएगा उनकी सीमान्त उत्पादकता कम होती जाएगी अर्थात् घटते प्रतिफल का नियम (Law of Diminishing Returns) लागू होने लगेगा। इस नियम के फलस्वरूप भूस्वामी श्रम तथा पूँजी की जिस अन्तिम इकाई का प्रयोग करेगा, उसे सीमान्त इकाई (Marginal Unit) कहा जाएगा तथा उससे पहले की इकाईयों को अन्तर–सीमान्त इकाईयाँ (Intra-Marginal Units) कहा जाएगा। घटते प्रतिफल के नियम के कारण सीमान्त इकाई तथा अन्तर सीमान्त इकाई के उत्पादन में जो भेद होगा उसे भी भेदात्मक लगान कहा जाएगा। इस प्रकार घटते प्रतिफल के नियम के अनुसार गहन खेती में भेदात्मक लगान उत्पन्न होता है।

स्थिति लगान (Situation Rent)

भूमि की स्थिति में अन्तर पाये जाने के कारण जो लगान पाया जाता है उसे स्थिति लगान (Situation Rent) कहते हैं। जो भूमि मण्डी या शहरों के अधिक समीप होती है उस पर शहर से दूर स्थिति भूमि की अपेक्षा अधिक लगान प्राप्त होता है। इसका एक कारण है कि शहर का मण्डी के अधिक समीप होने के कारण उस भूमि की उपज को कम खर्च में मण्डी में पहुँचाया जा सकता है। इस प्रकार यातायात खर्चे (Transport Expenses) की बचत हो जाती है। दूसरा कारण यह होता है कि मण्डी में वस्तु की कीमत गाँव से अधिक प्राप्त होती है। इस प्रकार की स्थिति में अन्तर के कारण से भूमिपति को जो आधिक्य (Surplus) प्राप्त होता है, उस लगान को स्थिति लगान कहते हैं।

लगान के सिद्धान्त (Theories of Rent)

लगान के दो मुख्य निम्नलिखित सिद्धान्त हैं

(1) रिकार्डो का लगान सिद्धान्त (Recardian Theory of Rent)
(2) लगान का आधुनिक सिद्धान्त (Modern Theory of Rent)

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त या लगान का परम्परावादी सिद्धान्त (Recardian Theory of Rent or Classical Theory of Rent)

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो ने अपनी पुस्तक Principles of Political Economy and Taxation (1817) में सबसे पहले लगान के सम्बन्ध में एक व्यवस्थित (Systematic) सिद्धान्त दिया था। रिकार्डो से पहले फिज्योक्रेटस तथा एडम स्मिथ लगान को प्रकृति की उदारता (Bounty) का परिणाम मानते थे। उनके अनुसार भूमि पर खेती करने के लिए जितना श्रम लगाया जाता है, प्रकृति के सहयोग के फलस्वरूप उत्पादन उससे कई गुणा अधिक होता है। यह अधिक उत्पादन शुद्ध उत्पादन (Net Profit) अथवा लगान कहलाता है। परन्तु रिकार्डो के अनुसार लगान प्रकृति की कन्जसी (Niggardlines) का परिणाम है। परम्परावादी अर्थशास्त्र जेम्स एण्डरसन ने रिकार्डो से पहले यह विचार प्रकट किया था कि लगान इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि भूमि की उपजाऊ शक्ति (Fertility) में अन्तर होता है। कृषि उपज या उत्पादन बढ़ाने के लिए जब विस्त त खेती की जाती है तो घटिया किस्म की भूमि पर भी खेती करनी पड़ती है। इसके फलस्वरूप अपेक्षाकृत बढ़िया भूमि पर खेती करने से जो अधिक उपज उत्पन्न होती है वह लगान कहलाएगी। माल्थस के अनुसार, भूमि के एक निश्चित क्षेत्र पर गहन खेती करके उपज बढ़ाई जा सकती है, परन्तु घटते प्रतिफल के नियम (Law of Diminishing Returns) के अनुसार जैसे–जैसे श्रम तथा पूँजी की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाएगा, सीमान्त उत्पादकता कम होती जाएगी तथा पहले वाली इकाईयों से सीमान्त इकाई की अपेक्षा जो अधिक उपज होगी वह लगान कहलाएगी। रिकार्डो ने अपने लगान के सिद्धान्त में एण्डरसन तथा माल्थस दोनों के विचारों का समन्वय किया है।

लगान की परिभाषा (Definition of Rent)

रिकार्डो के अनुसार, ''लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि की मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों के लिए भूस्वामी को दिया जाता है।'' (Rent is that portion of the produce of the earth which is paid to the landlord for the use of original and indestructible powers of the soil.—Recardo)। इस परिभाषा के अनुसार भूमि की मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिए भूमि की उपज में से ही जो भाग भूमि के स्वामी को दिया जाता है, वह लगान है।

सिद्धान्त की मान्यताएँ
(Assumptions of the Theory)

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है

(1) भूमि की उर्वरता (Fertility) में अन्तर है। कुछ भूमि बढ़िया अर्थात् उपजाऊ होती है परन्तु कुछ भूमि घटिया अथवा कम उपजाऊ होती है।

(2) समस्त अर्थव्यवस्था के लिए भूमि की पूर्ति स्थिर (Fixed) होती है, उसे बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता।

(3) भूमि का केवल एक ही उपयोग होता है अर्थात् उस पर खेती करना। भूमि के वैकल्पिक उपयोग (Alternative Uses) नहीं होते।

(4) वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है, इसलिए सारे बाजार में एक प्रकार का कृषि उत्पादन एक ही कीमत पर बिकता है।

(5) कृषि के क्षेत्र में घटते प्रतिफल का नियम लागू होता है। (6) अर्थव्यवस्था में सीमान्त भूमि (Marginal Land) अर्थात् लगान रहित भूमि (No Rent Land) भी पाई जाती है।

(7) भूमि पर खेती का कार्य, भूमि की उपजाऊ शक्ति के क्रम के अनुसार किया जाता है। किसान अधिक उपजाऊ भूमि पर, कम उपजाऊ भूमि की अपेक्षा पहले खेती करते हैं।

(8) भूमि की उपजाऊ शक्ति मौलिक (व्तपहपदंस) तथा अविनाशी (Indestructible) है।

(9) जनसंख्या में वृद्धि होने से कृषि पदार्थों की माँग बढ़ती है।

(10) कृषि उपज की लागत श्रम की मात्रा पर निर्भर करती है। सब प्रकार की भूमि के निश्चित क्षेत्रफल पर किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिए श्रम की एक जैसी संख्या लगानी पड़ती है। अतः उत्पादन लागत एक जैसी होती है, परन्तु उत्पादन की मात्रा विभिन्न होती है।

सिद्धान्त की व्याख्या
(Statement of Theory)

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की व्याख्या एक नए–नए आबाद देश के उदाहरण की सहायता से की जा सकती है। एक नए देश में आरम्भ में जनसंख्या बहुत कम होती है इसलिए सब प्रकार की भूमि की पूर्ति उसकी माँग से अधिक होती है। भूमि प्रकृति का निःशुल्क साधन है अतएव लोगों को भूमि मुफ्त में मिल जाती है। भूमि की उर्वरता में अन्तर होने के कारण वे सबसे पहले अच्छी श्रेणी के भूमि पर खेती करेंगे। A श्रेणी की भूमि की पूर्ति की माँग से अधिक है। इसलिए उर्वरता में अन्तर होने पर भी इस भूमि के लिए कोई लगान नहीं देना पड़ेगा। अतएव केवल उर्वरता के अन्तर के कारण उत्पन्न नहीं होत धीरे–धीरे देश की जनसंख्या बढ़ने के कारण भूमि की माँग बढ़ेगी तो सबसे अच्छी A श्रेणी की भूमि सीमित होने के कारण इस भूमि की माँग, पूर्ति से अधिक हो जाएगी। लोगों को A श्रेणी से घटिया B श्रेणी की भूमि पर खेती करनी पड़ेगी। मान लीजिए A श्रेणी की एक हैक्टेयर भूमि पर 5 श्रमिक लगाने से 10 क्विटल अनाज पैदा होता है तथा B श्रेणी की एक हैक्टेयर भूमि पर 5 श्रमिक लगाने से 5 क्विटल अनाज उत्पन्न होता है तो A श्रेणी के भूस्वामियों को उसी लागत पर 5 क्विटल अनाज अधिक प्राप्त होगा, जो लगान (Rent) कहलाएगा। यह लगान भूमि की दुर्लभता के कारण घटिया किस्म की भूमि पर उत्पादन करने से उत्पन्न हुआ है। यदि मान लीलिए सब भूमि एक समान है अर्थात् भूमि की उर्वरता में कोई अन्तर नहीं पाया जाता तो भी जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ती जाएगी भूमि की माँग बढ़ेगी परन्तु पूर्ति स्थिर रहेगी। भूमि की पूर्ति

के माँग से कम होने के कारण जो लोग भूमि प्राप्त करना चाहते हैं वे भूमि के लिए कुछ भुगतान करने को तैयार हो जाएंगे। इस भुगतान को लगान कहा जाएगा। अतएवं यदि सब भूमि एक समान है अर्थात् उसकी उर्वरता में कोई अन्तर नहीं है, तो भी भूमि की दुर्लभता के कारण लगान उत्पन्न होगा। संक्षेप में, लगान भूमि की दुर्लभता के कारण उत्पन्न होता है। भूमि की उर्वरता का अन्तर तो केवल लगान की रकम तथा उसमें पाई जाने वाली विभिन्नता का माप है। (Rent arises due to scarcity of land- The difference in fertility is the measure of the size of rent.)

लगान निर्धारण (Determination of Rent)

रिकार्डो के अनुसार लगान का निर्धारण दो प्रकार की परिस्थितियों में किया जा सकता है– (1) विस्तृत खेती (Extensive Cultivation) (2) गहन खेती (Intensive Cultivation)

(1) विस्तृत खेती में लगान (Rent in Extensive Cultivation)

विस्तृत खेती उस खेती को कहते हैं जिसमें उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक भूमि का प्रयोग किया जाता है। मान लो, किसी राष्ट्र की कुल भूमि को उपजाऊ शक्ति के अनुसार 4 श्रेणियों ए, बी, सी और डी में बाँटा गया है। आरम्भ में जब किसी देश में जनसंख्या बहुत कम होती है, लोग सबसे अच्छी भूमि अर्थात् ए श्रेणी पर कृषि करते हैं। मान लीजिए इस भूमि पर श्रम तथा पूँजी की एक इकाई, जिसकी कीमत 100 रुपए है, लगाने से 10 क्विटल गेहूँ उत्पन्न होता है। इस दशा में कोई लगान उत्पन्न नहीं होता, क्योंकि ऐसी भूमि काफी मात्रा में उपलब्ध है। अब आबादी बढ़ने से बी ग्रेड की जमीन को कल्टीवेटर के दायरे में लाया जाएगा। श्रम और पूंजी की समान मात्रा के साथ और खेती की एक ही विधि के साथ, बी ग्रेड भूमि कम मात्रा में उपज देगी। मान लीजिए कि श्रम और पूंजी के निवेश के साथ रु 100/– ए ग्रेड भूमि से 120 क्विंटल गेहूँ मिलता है, जबकि बी ग्रेड भूमि जो कम उपजाऊ भूमि है, 90 क्विंटल गेहूँ उपज देती है।

इसका मतलब है कि 90 क्विंटल गेहूं को कीमत पर बेचना चाहिए जिससे बी ग्रेड की जमीन के मालिक रुपये का खर्च वसूल कर सकें। 100/–. अब बाजार में गेहूं की कीमत चाहे ए ग्रेड की जमीन से उगाई गई हो या बी ग्रेड की जमीन से, एक ही होनी चाहिए। इसका मतलब है कि एक ग्रेड भूमि के मालिकों को कुल 120 क्विंटल उपज में से केवल 90 क्विंटल बेचकर गेहूं की खेती की लागत वसूलने के लिए छोड़ दिया जाएगा। इस प्रकार उनके पास 30 क्विंटल गेहूं अधिशेष रह जाएगा।

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि किसान को बी ग्रेड की जमीन पर खेती करनी है और 90 क्विंटल गेहूं या ए ग्रेड की जमीन मिलती है, जिससे उसे 120 क्विंटल गेहूं मिलता है, अगर उसे ए ग्रेड के मालिकों को 30 क्विंटल का किराया देना है। ए ग्रेड भूमि पर खेती करने के अधिकार के लिए भूमि। जैसे ही बी ग्रेड की भूमि को खेती के लिए लिया जाता है, ए ग्रेड भूमि के मालिक को अधिशेष प्राप्त होता है। यह अधिशेष एक ग्रेड भूमि पर लगान का गठन करता है।

यदि, तथापि, जनसंख्या में और वृद्धि के कारण, बी ग्रेड भूमि की आपूर्ति समाप्त हो जाती है। सी ग्रेड की जमीन पर खेती करना जरूरी हो जाएगा। हमारे अनुमान के अनुसार, श्रम और पूंजी की राशि रु। इसमें 100ध्– का निवेश किया जाएगा। चूंकि सी ग्रेड भूमि बी ग्रेड भूमि से कम है, इसलिए यह माना जाता है कि सी ग्रेड भूमि केवल 60 क्विंटल गेहूं पैदा करेगी।

अब गेहूं को उतनी ही कीमत पर बेचना होगा, जितनी सी ग्रेड की जमीन की खेती की लागत वसूल करेगी। इसका मतलब है कि ए और बी ग्रेड की भूमि के मालिक क्रमशः 60 और 30 क्विंटल के अधिशेष का आनंद लेंगे। समय के साथ डी ग्रेड की जमीन भी खेती के दायरे में आ जाएगी।

मान लीजिए इसकी उपज 30 क्विंटल ही है। यह भूमि के ए, बी और सी ग्रेड के अधिशेष या आर्थिक किराए को बढ़ाएगा। ए ग्रेड भूमि को अधिकतम अधिशेष मिलेगा और बी और सी ग्रेड भूमि को डी ग्रेड भूमि पर ए ग्रेड भूमि से थोड़ा कम मिलेगा। डी ग्रेड की भूमि पर कोई लगान नहीं है क्योंकि यह सीमांत भूमि है या यह सीमांत भूमि है।

इसे एक तालिका की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

Table 1

Grades of Land	Cost of Doses of Labour and Capital (Rs.)	Production	Surplus Over other Land	Rent
A	100	120	120–30 = 90	90
B	100	90	90–30 = 60	60
C	100	60	60–30 = 30	30
D	100	30	30–30 = 0	0

तालिका 1 से पता चलता है कि अधिक से अधिक निम्न भूमि पर खेती की जाती है:

याद रखें बेहतर भूमि एक अधिशेष कमाती है। हमारे उदाहरण में, डी वह भूमि है जिसकी उत्पादन लागत बाजार मूल्य द्वारा कवर की जाती है। इसका कोई किराया नहीं मिलता। यह 'नो रेंट लैंड' है। दूसरी ओर, ए, बी और सी भूमि एक अंतर अधिशेष अर्जित करती है। यहां यह याद रखना चाहिए कि जब केवल ए की खेती की जाती थी, तो वह 'नो रेंट लैंड' नहीं थी। जब बी को खेती के अधीन लाया गया, तो ए लगान कमाने वाली भूमि बन गया। इसी तरह बी और सी लगान कमाने वाली भूमि तभी बन गए जब क्रमशः सी और डी ग्रेड की भूमि पर खेती की गई। इस प्रकार पहले की भूमि का अधिशेष बढ़ता चला जाता है।

इस तथ्य को निम्नलिखित आकृति की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है:

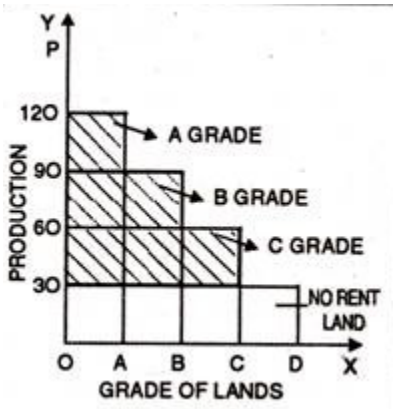

चित्र में OY–अक्ष उपज का प्रतिनिधित्व करता है जो श्रम और पूंजी के समान आवेदन के साथ विभिन्न ग्रेड भूमि से प्राप्त किया जा सकता है। OX–अक्ष भूमि के विभिन्न ग्रेडों को दर्शाता है। आंकड़े के अनुसार, डी ग्रेड भूमि सीमांत या बिना किराए की भूमि है। यह खेती के मार्जिन पर एक भूमि है। एक ग्रेड भूमि सबसे पहले इस्तेमाल की जाएगी। इससे 100 क्विंटल गेहूं की पैदावार होने की संभावना है। जब इस जमीन पर पूरी तरह कब्जा हो जाएगा तभी लोग बी ग्रेड की जमीन पर खेती करेंगे।

बी ग्रेड की जमीन पर कब्जा होने के बाद बढ़ती आबादी को सी ग्रेड की जमीन पर खेती करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। जनसंख्या में और वृद्धि के साथ, डी ग्रेड भूमि या सीमांत भूमि को खेती के तहत लाया

जाएगा। डी ग्रेड को **नो रेंट लैंड (No Rent Land)** कहा जा सकता है क्योंकि यह खेती के मार्जिन पर है। उपज की कीमत डी ग्रेड या सीमांत भूमि पर खेती की सीमांत लागत के अनुसार होगी। इसलिए, बेहतर या अति–सीमांत भूमि पर एक अधिशेष दिखाई देगा।

यह अधिशेष या लगान सीमांत भूमि पर उत्पादित की तुलना में भूमि के बेहतर ग्रेड पर उत्पादित मात्रा में अंतर है। उपरोक्त आरेख में छायांकित क्षेत्र लगान दर्शाता है। यहाँ यह स्पष्ट है कि सीमांत भूमि आर्थिक लगान के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

लागत वक्र द्वारा किराए का निर्धारण:

किराए के निर्धारण को लागत वक्रों की सहायता से भी समझाया जा सकता है। मान लीजिए, अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतिस्पर्धा मौजूद है। गेहूं की मांग इस हद तक बढ़ गई है कि किसान सबसे नीची जमीन पर भी खेती करने को मजबूर हैं। गेहूँ की कीमत और उसकी औसत उत्पादन लागत के बीच का अंतर आर्थिक लगान को मापता है। इस प्रकार:

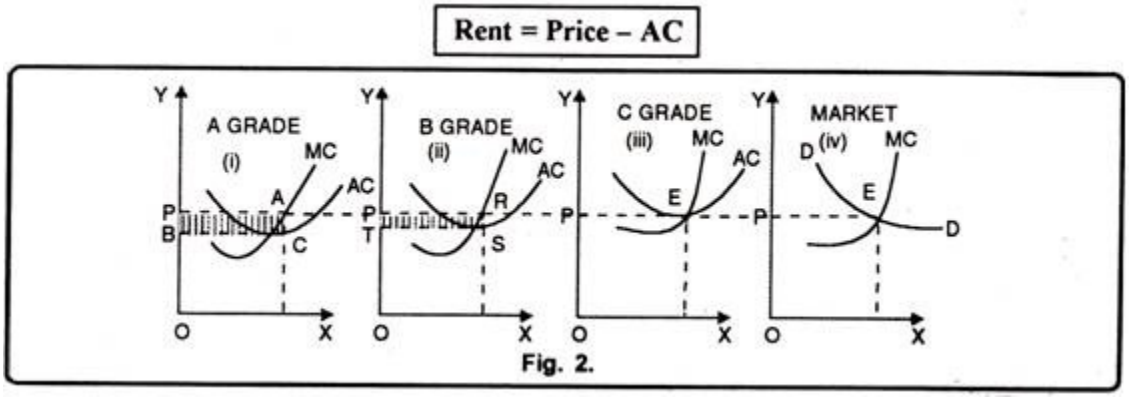

Fig. 2.

चित्र 2 (iv) में गेहूं का ओपी मूल्य निर्धारित किया जाता है और यह मूल्य ए, बी और सी ग्रेड के भूमि मालिकों के उत्पादकों द्वारा वसूला जाएगा। चित्र 2 (i) में OP मूल्य पर, ए–ग्रेड भूमि का किराया PACB है। चित्र में। 2 (ii) OP मूल्य पर, बी ग्रेड भूमि पर किराया PRST है जबकि चित्र 2 (iii) में सी–ग्रेड भूमि पर OP मूल्य पर, कोई किराया नहीं है क्योंकि इसकी औसत लागत कीमत के बराबर है। इसलिए इसे सीमांत भूमि कहा जाता है।

2. गहन खेती के तहत किराया (Rent in Extensive Cultivation) :

गहन खेती से तात्पर्य उस प्रकार की खेती से है जिसमें कृषि उत्पादन में वृद्धि केवल एक ही भूमि पर श्रम और पूंजी की अधिक इकाइयाँ लगाने से होती है। दूसरे शब्दों में सघन खेती का क्षेत्र वही रहता है।

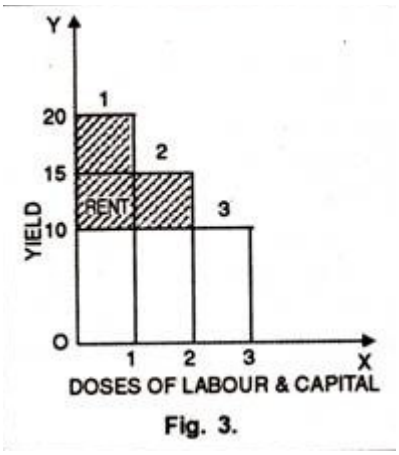

Fig. 3.

रिकार्डो मानता है कि **ह्रासमान प्रतिफल** का नियम कृषि में लागू होता है अर्थात जब एक ही भूमि के टुकड़े पर अधिक से अधिक श्रम और पूंजी का उपयोग किया जाता है, तो उत्पादन घटती दर से बढ़ता है। इसका मतलब है कि सीमांत उत्पाद कम हो जाता है।

चित्र 3 में OX–अक्ष के साथ हम श्रम की खुराक और समान मूल्य की पूंजी और ओए–अक्ष के साथ उठाए गए उत्पाद का प्रतिनिधित्व करते हैं। आयत संख्या 1 के क्षेत्र द्वारा दिखाया गया श्रम और पूंजीगत उपज उत्पादन

की पहली खुराक, आयत संख्या 2 के क्षेत्र द्वारा इंगित उपज में दूसरी खुराक लाती है और तीसरी खुराक आयत संख्या द्वारा दर्शाई गई उपज का उत्पादन करती है।

3. अगर निर्माता को लगता है कि तीसरी खुराक को लागू करना उसके लिए उचित है, तो उनके द्वारा उगाई गई उपज की कीमत अंतिम या सीमांत खुराक द्वारा निर्धारित की जाएगी।

सीमांत खुराक से ऊपर की ओर मापने पर, पहले की सभी खुराक से अधिशेष या किराया प्राप्त होता है। यहां किराया पूरी तरह से प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण निकलता है। पहली खुराक में किराया और तीसरी खुराक पर दूसरी खुराक सामने आएगी जो कि सीमांत खुराक होती है, जैसा कि चित्र के छायांकित क्षेत्र में दिखाया गया है। यदि निर्माता दूसरी खुराक पर रुक जाता है तो यह खुराक अंतिम या सीमांत खुराक बन जाएगी और उस स्थिति में केवल पहली खुराक के मामले में किराया उत्पन्न होगा जैसा कि चित्र में बिंदीदार रेखा द्वारा समझाया गया है।

राजस्व वक्र द्वारा किराए का निर्धारणः

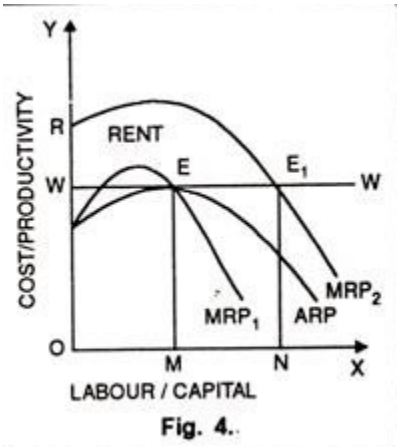

Fig. 4.

अब मान लीजिए कि शुरुआत में औसत राजस्व उत्पादकता में एआरपी और MRP_1 दी गई कीमत पर भूमि की सीमांत राजस्व उत्पादकता है। बिंदु E पर, ARP और MRP_1 और WW एक दूसरे के बराबर हैं। इस प्रकार, यह संतुलन की स्थिति है।

ऐसी स्थिति में श्रम और पूंजी की ओएम इकाइयों को लगाया जाएगा। यहां कोई किराया नहीं लगेगा क्योंकि लागत और उत्पादकता समान हैं। फिर से मान लीजिए कि भूमि की उपज की कीमत में वृद्धि के कारण MRP_1 ऊपर की ओर बढ़ जाता है और MRP_2 का रूप धारण कर लेता है। नया संतुलन बिंदु E1 पर सहारा लेगा। यह इंगित करता है कि श्रम और पूंजी की अधिक इकाइयाँ पहले की तुलना में यानी व्छ इकाइयों में। कुल उत्पादन WRE_1N होगा। इस अधिशेष WRE_1 वृद्धि को किराए के रूप में कहा जाएगा।

3. स्थिति किरायाः

स्थिति किराया उस प्रकार के किराए के रूप में माना जाता है जो भूमि की स्थिति में अंतर के कारण उत्पन्न होता है। बाजार के पास स्थित भूमि बाजार से दूर स्थित भूमि की तुलना में अधिक किराया देगी। ऐसा इसलिए है क्योंकि बाजार के पास स्थित भूमि की उपज को छोटे खर्च पर ले जाया जा सकता है।

y?k ç'u%

1. सीमांत उत्पादकता को परिभाषित करें
2. क्वासि किराया का अर्थ स्पष्ट करें।
3. किराए से आपका क्या मतलब है?
4. मजदूरी को परिभाषित करें।

yck loky%

1. सीमांत उत्पादकता सिद्धांत के बारे में विस्तार से बताएं।
2. एकाधिकार बाजार स्थिति के तहत मजदूरी दरों के निर्धारण की प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन करें।
3. किराए से आपका क्या मतलब है? किराए के आधुनिक सिद्धांतों को भी विस्तार से बताएं।
4. किराए के रिकार्डियन सिद्धांत पर एक विस्तृत नोट लिखें?